अध्याय—7

अथ अदादिगणः

सामान्य परिचय

धातुपाठ में जो धातु अद् से लेकर आगे पढ़ी गई हैं उन्हें अदादिगण की धातुएँ कहते हैं। अदादिगण की धातुओं में शप् विकरण का लोप हो जाता है और सन्धिनियमों के अनुसार वर्णों में परिवर्तन होकर रूप बनते हैं। एम. ए. प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में अदादिगण की केवल पाँच धातुएँ निर्धारित हैं—अद्, हन्, अस्, दुह तथा इण्। परन्तु विद्यार्थियों के ज्ञान के लए लघुसिद्धान्त कौमुदी में दी गई सभी धातुओं को यहाँ दिया जा रहा है ताकि वे सभी प्रमुख धातुओं के रूपों को समझ सकें और उपयुक्त धातुओं के रूपों में लगने वाले सूत्र जो बीच में आए है, उन्हें समझ सकें।

अद भक्षणे

खाना। राक्षस आदियों के खाने के लिये इसका प्रयोग होता है।

अदि-प्रभतिभ्यः शपः 2.4.72

लुक् स्यात। अत्ति, अत्तः, अदन्ति। अत्सि, अत्थः, अत्थ। अद्मि अद्वः अद्मः।

व्याख्याः अदादि गण की धातुओं से परे शप् का लोप हो।

अत्ति— अद् के लट् में तिप् आदि आदेश होने पर 'कर्तरि शप्' से शप होता है। उसका प्रकृत सूत्र से लोप हो जाता है तब 'अद् ति' दकार को 'खरि च' से दकार होने से रूप सिद्ध होता है।

अत्तः— इसी प्रकार तस् में सिद्ध होता है।

अदन्ति—झि के झकार को अन्त आदेश हो जाने पर रूप बनता है।

सिप् में—अत्सि। थस् और थ में भी दकार को चर् तकार होने से अत्थः, अत्थ रूप होते हें। मिप्, वस् और मस् में दकार ही रहता है।।

लिट्यन्यतरस्याम् 2.4.40

अदो घस्लृ वा स्यात् लिटि। जघास। उपधालोपः-

व्याख्याः 'अद्' धातु को 'घस्लृ' आदेश विकल्प से हो लिट् परे रहते।

'घस्लृ का''लृ' इत्संज्ञक है।

जघास—'घस्' आदेश होने पर द्वित्व, अभ्यासकार्य हलादिशेष तथा 'कुहोश्चुः' से चवर्ग झकार और उसकी 'अभ्यासे चर्च' से जश् जकार होता है। 'अत उपधायाः' से णल् के परे रहते उपधा अकार को वद्धि होती है।

उपधालोप इति— कित् होने से अतुस् में 'जघस् अतुस्' इस अवस्था में 'गम—हन—जन—खन—घसां लोपः क्ङित्यनङि' सूत्र से उपधा अकार का लोप होता है। तब 'ज घ् स् अतुस्' यह स्थिति बनती है।

शासि-वसि-घसीनां च 8.3.60

इण-कुभ्यां परस्यैषां सस्य षः स्यात्। घस्य चर्त्वम्—जक्षतुः, जक्षुः। जघसिथ, जक्षथुः जक्ष। जघास-जघस, जक्षिव, जक्षिम। आद, आदतुः, आदुः।

व्याख्या: इण् और कवर्ग से पर शास् (शासन करना), वस् (रहना) और घस् (खाना) धातुओं के अवयव सकार को ष कार हो। 'आदेशप्रत्यययोः' से इनके सकार का षकार नहीं हो सकता। क्योंकि इनका सकार न आदेशरूप है और न प्रत्यय का अवयव ही । आदेशरूप और प्रत्यय के अवयव सकार को ही 'आदेशप्रत्यययोः' 'सूत्र' मूर्धन्य करता है। यद्यपि 'घस्' आदेश है, अतः सकार आदेश का अवयव है, परन्तु आदेशरूप सकार को पूर्वोक्त सूत्र मूर्धन्य करता है। यह सकार आदेश का अवयव है, आदेशरूप नहीं। अतः उक्त स्थलों में मूर्धन्य आदेश सिद्ध नहीं थे ओर अतएव यह सूत्र बनाना पड़ा।

जक्षतुः—'ज घ्स् अतुस्' यहाँ मूर्धन्य षकार होने पर षकार को 'खरि च' से चर् ककार होता है। क—ष संयोग में क्ष होकर रूप सिद्ध होता है।

जक्षुः— इसमें भी पूर्ववत् सिद्धि होती है।

जघसिथ—में नित्य इट् होता है, क्योंकि 'घस्' आदेश के लिट् और लुङ् में ही होने के कारण तास् में प्रयोग होता नहीं, अतः यह तास् में नित्य अनिट् नहीं। इसीलिये 'अजन्तोकारवान् वा' यह नियम यहाँ नहीं लगता। क्रादि नियम से इट् हो जाता है। इसी प्रकार 'जक्षिव' और 'जक्षिम' में भी।

घस् आदेश के अभावपक्ष में आद, आदतुः, आदुः रूप बनते हैं।

इड् अत्यर्ति व्ययतीनाम् 7.2.66

अद्, ऋ व्यो एभ्यस्थलो नित्यमिट् स्यात्। आदिथ। अत्ता। अत्स्यति। अत्तु-अत्तात्, अत्ताम्, अदन्तु।

व्याख्या: अद् (खाना,), ऋ (जाना) और व्यो (ढकना) धातुओं से परे थल् को नित्य् इट् हो।

आदिथ— अद् धातु के थल् को धातु के उपदेश में अकारवान् होने से वैकल्पिक इट् प्राप्त था। प्रकृत सूत्र से नित्य होता है। तब 'आदिथ' रूप सिद्ध होता है।

आदिव, आदिम—'व' और 'म' में क्रादिनियम से नित्य इट् होकर रूप बनते हैं।

अत्ता— लुट् में अनिट् होने से इट् नहीं होता, दकार को चर् तकार होता है।

अत्स्यति—यह रूप भी पूर्वोक्त प्रकार से बनता है।

अत्तु, अत्तात्, अत्ताम् इन प्रयोगों में भी शप् के लोप होने पर दकार को तकार रूप सिद्ध होता है।

हु-झल्भ्यो हेर्धि 6.4.101

होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात्। अद्धि-अत्तात्, अत्तम, अत्र। अदानि, अदाव, अदाम।

व्याख्या: हु (हवन करना, खाना) और झलन्त धातुओं से पर 'हि' को 'धि' आदेश हो।

अद्धि— अद धातु दकारान्त होने से झलन्त है, अतः इससे परे 'हि' को 'धि' होता है। तब रूप सिद्ध होता है।

अदानि, अदाव, अदाम—उत्तम में प्रत्ययों को 'आडुत्तमस्य पिच्च' सूत्र से [१]आट् आगम होकर रूप बनते हैं।

लङ् में धातु को आट् आगम होता है, क्योंकि यह अजादि धातु है। 'आद् त्' यह स्थिति बनती है।

अदः सर्वेषाम् 7.3.100

अदः परस्यापक्तसार्वधातुकस्य अट् स्यात् सर्वमतेन। आदत्, आत्ताम्, आदन। आदः, आत्तम्, आत्त। आदम्, आद्व, आद्म। अद्यात्, अद्याताम्, अद्युः। अद्यात्, अद्यास्ताम्, अद्यासुः।

व्याख्या: अद् धातु से परे अपक्त सार्वधातुक को 'अट्' आगम हो सब के मत से।

---

१. आट् करने का फल भ्वादिगण में तो है नहीं, क्योंकि वहाँ शप् रहताहै, उसके अकार को 'अतो दीर्घो यञि' से दीर्घ करने से भी यथेष्ट रूप बन जाते हैं। वहाँ तो सूत्र की प्राप्ति होती है, इसलिए प्रवत्ति होती है। अदादिगण में शप् का लोप हो जाता है, वहाँ आअ् की प्रतीति स्पष्ट होती है, आट् करने का फल मालूम पड़ जाता है। इसी प्रकार अन्य गणों में भी फल है—जिनमें अकार नहीं मिलता—दिवादि, तुदादि और चुरादि में भी भ्वादि के समान आट की प्रतीति स्पष्ट नहीं होती। क्योंकि उनमें भी अकार मिलता है।

आदत्—'आद् त्' यहाँ अद् से परे अपक्त सार्वधातुक त् को अट् आगम हो जायगा। तब 'आदत्' रूप बनता है।

आदः—'सिप्' का भी केवल 'सकार' बचा रहता है, अतः अपक्त होने से इसे भी अट् होकर आद् रूप बनता है।

आदन्—झि में 'झ' को अन्त आदेश होने से आदम् रूप सिद्ध होता है।

आदम्—'मिप्' को 'अम्' आदेश होने से आदम रूप सिद्ध होता है।

शेष—ताम्, तम्, त में चर् होता है। वस्, मस् में चर् भी नहीं।

अद्यात् अद्याताम्—विधिलिङ् में सार्वधातुक लकार होने से 'लिङः सलोपोनन्त्यस्य' से यासुट् के सकार का लोप हो जाता है। शप् के लोप होने से अकार वहाँ नहीं मिलता, अतएव 'अतो येयः' की प्रवत्ति नहीं मिलती।

अद्यात् अद्यास्ताम्—आशीर्लिङ् के आर्धधातुक होने से सकार का लोप नहीं होता । अतः यहाँ विधिलिङ् और आशीर्लिङ् के रूपों में सकार के लोप होने में ही अन्तर पड़ता है।

एकवचन में तो कोई अन्तर नहीं रहता, क्योंकि वहाँ आशीर्लिङ् में भी संयोग आदि होने के कारण 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' सूत्र से सकार का लोप हो जाता है। द्विवचनादियों में भी सकार संयोगादि रहता है, पर संयोग न पदान्त होता है और न उससे झल् परे ही मिलता है। जैसे —'अद्यास्ताम्' यहाँ 'स्त्' संयोग है, यह पदान्त नहीं, पदान्त तो म् है और न इससे झल् परे है, इससे परे तो 'आ' अच् हैं अतः 'स्कोः संयोगद्योरन्ते च' से भी लोप नहीं हो पाता। अजादियों में भी पूर्वोक्त दो निमित्त पदान्त और झल् परे न मिलने से सकार का लोप नहीं हेता।

म० अद्याः अद्यातम्, अद्यात। अद्याः, अद्यास्तम्, अद्यास्त।

उ० अद्याम, अद्याव, अद्याम,। अद्यासम्, अद्यास्व, अद्यास्म।,

सिप् में भी समान रूप बन जाते हैं। क्योंकि आशीर्लिङ् में संयोग 'स्स्' पदान्त में मिल जाता है।

लुङ्-सनोर्घस्ल 2.4.37

अदो घस्लृ स्यात् लुङि सनि च।

लृदित्वादङ्-अघसत्। आत्स्यत्

व्याख्याः अद् धातु को 'घस्लृ' आदेश हो लुङ् और 'सन्' परे रहते।

अघसत्—'अद्' को 'घस्लृ' आदेश होने पर 'अ घस् च्लि त्' इस अवस्था में लृदित् होने से 'पुषादि—द्युतादि—लृदितः परस्मैपदेषु' से 'च्लि' को 'अङ्' आदेश होता है। तब यह रूप सिद्ध होता है।

प्र० अघसत्, अघसताम्, अघसन्।

म० अघसः, अघसतम्, अघसत।

उ० अघसम्, अघसाव, अघसाम।

आत्स्यत्—लृङ् में आट्, तिप्, इकार लोप, स्य प्रत्यय, दकार को चर् तकार होकर रूप सिद्ध होता है।

अद् धातु के दसों लकारों में रूप

लट् लकार—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र.पु.	अत्ति	अत्तः	अदन्ति
म.पु.	अत्सि	अत्थः	अत्थ
उ.पु.	अद्मि	अद्वः	अद्मः

लिट् लकार—

	ए.व.	द्वि.व.	बहु,व.
प्र.पु.	जघास	जक्षतुः	जक्षुः

म.पु.	जघासिथ	जक्षथुः	जक्ष
उ.पु.	जघास, जघस	जघसिव	जघसिम

वैकल्पिक रूप—

	ए.व.	द्वि.व.	बहु,व.
प्र.पु.	आद	आदतु	आदुः
म.पु.	आदिथ	आदथुः	आद
उ.पु.	आद	आदिव	आदिम

लुट् लकार—

	ए.व.	द्वि.व.	बहु,व.
प्र.पु.	अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः
म.पु.	अत्तासि	अत्तास्थः	अत्तास्थ
उ.पु.	अत्तास्मि	अत्तास्वः	अत्तास्मः

लट् लकार—

	ए.व.	द्वि.व.	बहु,व.
प्र.पु.	अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति
म.पु.	अत्स्यसि	अत्स्यथ	अत्स्यथ
उ.पु.	अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्याम्

हन हिंसागत्योः हन्ति.

(हिंसा करना, जाना)—

हन्ति—शप् के लोप होने पर 'हन् ति' इस अवस्था में 'नश्चापदान्तस्य झलि' सूत्र से अपदान्त नकार को अनुस्वार और 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' से अनुस्वार को परसवर्ण—पर तकार का सवर्ण—नकार होकर 'हन्ति' रूप सिद्ध होता है। यद्यपि इतनी प्रक्रिया करने पर भी रूप में कोई वैषम्य नहीं, तथापि शास्त्र की प्राप्ति होती है, इसलिए करना आवश्यक है।

अनुदात्तोपदेश-वनति-तनोत्यादीनाम् अनुनासिकलोपो झलि क्ङिति 6.4.37

अनुनासिकान्तानामेषां वनतेश्च लोपः स्यात्, झलादौ किति ङिति परे। यमि-रमि-नमि-गमि-हनि-मन्यतयोनुदात्तोपदेशाः। 'तनु-क्षणु-क्षिणु-ऋणु-तणु-घणु-वनु-मनु' तनोत्यादयः। हतः, ध्नन्ति। हंसि, हथः, हथ। हन्मि, हन्वः, हन्मः। जघान, जघ्नतुः जघ्नुः।

व्याख्याः अनुदात्तापेदेश (उपदेश में जो अनुदात्त पढ़े गऐ हों) वन् और तन् आदि गण को अनुनासिकान्त (अनुनासिक वर्ण जिनके अन्त में हो) धातुओं का लोप हो, झलादि कित् और ङित् प्रत्यय परे होने पर।

अलोन्त्यपरिभाषा से लोप इनके अन्त्य अनुनासिक वर्ण का ही होता है।

यमि—इति—उपदेश में अनुदात्त अनुनासिकान्त धातु निम्नलिखित छः हं—

यम् उपरमे (निवत्त होना)	णम् प्रह्वत्वे (नमत्कार करना)
रम् क्रीडायाम् (क्रीड़ा करना)	गम् गतौ (जाना)
हन हिंसागत्योः (हिंसा करना, जाना)	मन् (दिवादि) ज्ञाने (मानना, जानना)

तनु इति—तन्[1] आदि अनुनासिकान्त धातु निम्नलिखित ८ आठ हैं—

तन् विस्तारे (फैलना)	तण् अदने (खाना)

क्षण् हिंसायाम् (हिंसा करना) घण दीप्तौ (चमकना)
क्षिण् हिंसायाम् (हिंसा करना) घण् दीप्तो (ज्ञान करना)
ऋण् गतौ (जाना) वनु याचने (मांगना)

हतः— प्रकृत में हन् धातु अनुनासिकान्त अनुदात्तोपदेश है। अतः झलादि ङित् प्रत्यय 'तस्' के परे रहते अनुनासिक नकार का लोप होने से 'हतः' रूप सिद्ध होता है। 'तस्' अपित् सार्वधातुक होने से 'सार्वधातुकमपित्' सूत्र से ङिद्वत् होता है।

घ्नन्ति—में 'झि' अपित् सार्वधातुक होने से ङिद्वत् है, अतः 'गम—हन—जन—खन—घसां लोपः क्ङित्यनङि' सूत्र से उपधा अकार का लोप होने से 'ह् न् ति' इस अवस्था में नकार परे होने के कारण इकार को 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' सूत्र से कवर्ग—आन्तरतम्य से—घकार होकर रूप सिद्ध होता है।

हंसि— यहाँ हल पर होने से नकार को अनुस्वार होता है।

हथः, हथ— में झलादि ङित् प्रत्यय होने से अनुनासिक का लोप हो जाता है।

जघान— लिट्, तिप्, णल्, द्वित्व और हलादि शेष करने पर 'हहन् अ' इस अवस्था में 'कुहोश्चुः' से अभ्यास के हकार को आन्तरतम्य होने से घकार और उसको 'अभ्यासे चर्च' से जश् गकार होता है। उपधा अकार को 'अत उपधायाः' से वद्धि 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' से णित् प्रत्यय णल् परे होने से अभ्यासोत्तरखण्ड के हकार को कवर्ग घकार होने से रूप सिद्ध होता है। 'हो हन्तेः—' की प्रवत्ति अन्त में होती है।

जघ्नतुः—में 'गम—हन—जन—खन घसां लोपः क्ङित्यनङि' सूत्र से उपधा अकार का लोप होने पर अभ्यास के हकार को 'कुहोश्चु' से चुत्व झकार और उसको 'अभ्यासे चर्च' से 'हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु' से कुत्व होता है। शेष प्रक्रिया पूर्ववत् होती है।

जघ्नुः—की सिद्धि 'जघ्नतुः' के समान होती है।

अभ्यासाच्च 7.3.55

अभ्यासात् परस्य हन्तेर्हस्य कुत्वं स्यात्। जघनिथ-जघन्थ, जघ्नथुः, जघ्न। जघान-जघन, जघ्निव, जघ्निम। हन्ता। हनिष्यति। हन्तु हतात्, हताम्, घ्नन्तु।

व्याख्याः अभ्यास से परे हन् धातु के हकार को कवर्ग हो। आन्तरतम्य होने से हकार के स्थान में घकार होता है।

जघनिथ, जघन्थ—थल् में भरद्वाज—नियम से इट् विकल्प होने पर 'जहनिथ' और 'जहथ' यह स्थिति होती है। प्रकृतसूत्र[2] से इन दोनों स्थलों में अभ्यास से परे हकार को कुत्व घकार होने पर 'जघनिथ' और 'जघन्थ' रूप सिद्ध होते हैं।

जघ्निव और जघ्निम—इन में उपधालोप होने पर नकार परे होने से 'हो हन्तेः—' से कुत्व होता है। इट् क्रादिनियम से नित्य होता है।

हन्ता— लुट् के तिप् में उपदेश में अनुदात्त होने से 'एकाच उपदेशेनुदात्तात्' से इट् का निषेध होता है और नकार को अनुस्वार तथा उसकी परसवर्ण से पुनः नकार पूर्ववत् होता है।

हनिष्यति—लट् में 'ऋद्धनोः स्ये' से इट् होता है।

हन्तु—लोट् के तिप् में अनुस्वार और परसर्वण यथापूर्व होते हैं।

हतात् और हताम् में 'अनुदात्तोपदेश—' से अनुनासिक नकार का लोप होता है। शेष प्रक्रिया सामान्य ही होती है।

---

१. इन में वन् का पथक उपादान किया गया है। तनादियों के साथअनुनाकिान्त विशेषण कहने से केवल एक 'डुकृा करणे' धातु छूटती है, गणकी शेष सभी धातु आ जाती है।

२. यहाँ 'हो हन्तेः—' से कुत्व नहीं होता, क्योंकि न तो यहाँ ञित् और णित् प्रत्यय परे है और न नकार ही।

३. इसमें नकार को अनुस्वार और उसको परसवर्ण करना आवश्यक है। तभी प्रक्रिया ठीक होती है।

ध्नन्तु—लोट् के झि में उपधालोप होने पर नकार परे मिल जाने से हकार को 'हो हन्ते–' से कवर्ग घकार आदेश होकर रूप सिद्ध होता है।

हन्तेर्जः 6.4.36

हौ परे।

व्याख्याः हन् धातु को 'ज' आदेश हो 'हि' परे होने पर।

जहि— हन् धातु के लोट् के मध्यम के एकवचन में सिप् को 'हि' आदेश होने पर 'हन्' को 'ज' आदेश हुआ। तब जहि रूप सिद्ध हुआ।

यहाँ 'ज' आदेश होने पर अकारान्त से परे मिल जाने के कारण 'अतो हेः' से 'हि' का लोप प्राप्त होता है। इसके वारण के लिये उपाय आगे का सूत्र है।

असिद्धवदत्राभात् . 6.4.22.

इत ऊर्ध्वमापादसमाप्तेराभीयम्। समानाश्रये तस्मिन् कर्तव्ये तद् असिद्धम। इति जस्यासिद्धत्वान्न हेर्लुक्—जहि-हतात्, हतम्, हत। हनानि, हनाव, हनाम।

अहन्, अहताम्, अध्नन्। अहन्, अहन्, अहतम्, अहत।

अहनम्, अहन्व, अहन्म। हन्यात्।

व्याख्याः समानाश्रय आभीय कार्य करना हो तो पहले का किया हुआ आभीय कार्य असिद्ध के समान हो जाता है।

अत ऊर्ध्वमिति—छठे अध्याय के चतुर्थ पाद के इस २२ वें सूत्र से प्रारम्भ कर पाद की समाप्ति तक के सूत्रों से विहित कार्य 'आभीय' हैं।

समानाश्रय का अर्थ है— समान है आश्रय जिसका अर्थात् जिन कार्यो का निमित्त समान हो, उन्हें समानाश्रय कहते हैं।

प्रकृत में 'ज' आदेश और 'हि का लुक्' आभीय कार्य हैं और वे समानाश्रय भी हैं। क्योंकि ज' आदेश का आश्रय (निमित्त) प्रकृति 'हन्' और प्रत्यय 'हि दोनों हैं, तथा 'हि' लोप का आश्रय भी अदन्त अङ्ग ज (हन्) और प्रत्यय दोनों हैं। अतः दोनों के समानाश्रय आभीय कार्य होने से पहले किया हुआ 'ज' आदेश तत्पश्चात् प्राप्त 'हि' लोप के करते समय असिद्ध (के समान) हो जाता है। असिद्ध होने से हि लोप के प्रति 'हन्' ही रहता है जो अदन्त नही, इसीलिये लोप नहीं होता।

ताप्पर्य यह है कि जो कार्य हो जाने पर भी न हुआ माना जाये वह असिद्ध कहलाता है। जैसे हन्तेर्जः सूत्र की संख्या ३.४.३६ है अतः यह आभीय खण्ड में है। ज+हि ऐसी स्थिति में अतो हेः' सूत्र से हि का लोप प्रान्त होता है। किन्तु हन् के स्थान पर जो ज आदेश हुआ है वह असिद्ध है। अतः ज आदेश हो जाने पर भी अतो हेः' सूत्र के प्रति असिद्ध है अर्थात् हुआ नहीं माना जाएगा और हन्+हि यही स्थिति समझी जाएगी। इसलिए अदन्त न होने के कारण हि का लोप नहीं होगा।

हन्नानि, हनाव, हनाम—उत्तम में आट् का आगम होकर रूप बनते है।

अहन्—लङ् लकार के तिप् में अट् तथा शप् और इकार का लोप होने पर 'अहन् त्' इस दशा में 'ति' के अपक्त हल् तकार का हल् नकार से पर होने के कारण 'हल्ङ्य'ाब्यो दीर्घात् सुतिस्यपक्त हल्' सूत्र से लोप होकर 'अहन्' रूप सिद्ध होता है।

अहताम्—द्विवचन में नकार अनुनासिक का 'अनुदात्तोपदेश–' इत्यादि सूत्र से लोप होता है। अध्नन् उपधा अकार का लोप होने पर नकार पर मिल जाने से 'हो हन्तेः–' से हकार को कुत्व घकार होकर 'अध्नन्' रूप सिद्ध होता है।

अहन्—सिप् में भी इसी प्रकार इकार का लोप होने पर 'सि' के अपक्त हल् सकार का हलङ्यादि लोप होने से ही रूप बनता है।

अह्तम्, अहत—मध्यम पुरुष के द्विवचन और बहुवचन में अहताम् के समान रूपसिद्धि होती है।

हन्यात्, हन्याताम्, हन्युः—इत्यादि रूप विधिलिङ के बनते हैं।

आर्धधातुके 2.4.35

इत्यधिकृत्य।

व्याख्याः यह अधिकार सूत्र है। इसका यहाँ कोई विशेष अर्थ नहीं जैसा कि अधिकार सूत्र के विषय में होता है, अग्रिम सूत्रों के साथ मिलकर यह सार्थक और चरितार्थ होता है।

हनो वध लिङि 2.4.42

हनो 'वध' इत्यादेशः स्यात् आर्धधातुके लिङि।

व्याख्याः हन् धातु का 'वध' आदेश हो आर्धधातुक लिङ् के विषय मे(1) आशीर्लिङ में अर्थात् उसके आने के पूर्व ही प्रकृत सूत्र से हन् को 'वध' आदेश होता है।

लुङि च 2.4.43

वधादेशोदन्तः। आर्धधातुके इति विषयसप्तमी। तेनार्धधातुकोपदेशेदन्तत्वाद् अतो लोपः-वध्यात्, वध्यास्ताम्। अवधीत् अहनिष्यत्।

व्याख्याः लुङ् के विषय में (भी) हन् को 'वध' आदेश हो।

वधादेश इति—'वध' आदेश अदन्त है।

आर्धधातुके इति—'आर्धधातुके' यह विषयसपतमी[१] है, अर्थात् वैषयिक आधार में है, न कि पर अर्थ में। अतः 'आर्धधातुक' के परे होने की आवश्यकता नहीं, उस का विषय होना चाहिये अर्थात् आर्धधातुक प्रत्यय आने के पूर्व ही यह आदेश हो जाता है। तदनन्तर 'वध' से आर्धधातुक प्रत्यय आता है।

तेनेति— इससे आर्धधातुक के उपदेश काल में अदन्त होने से 'अतो लोपः' से अकार[२] का लोप हो जाता है।

वध्यात्, वध्यास्ताम्—अकार के लोप होने पर रूप बनते हैं।

अवधीत्—लुङ् प्रथम पुरुष के एकवचन का रूप हैं यहाँ 'नेटि' से वद्धि का निषेध हो जाता है। अवधिष्टाम, अवधिषुः। अवधीः, अवधिष्टम्, अवधिष्ट। उ० अवधिषम्, अवधिष्म, अवधिष्म।

यु मिश्रणामिश्रणयोः

मिलना और अलग करना।

उतो वद्धिर्लुकि हलि 7.3.89

लुग्विषये उतो वद्धिः पिति हलादौ सार्वधातुके, न त्वभ्यस्तस्य। यौति, युतः युवन्ति। यौषि, युथः, युथ। यौमि, युवः, युमः। युयाव। यविता। यविष्यति। यौतु-युतात। अयौत्, अयुताम्, अयुवन्। युयात-इइ उतो वद्धिर्न, भाष्ये 'ङिच्च पिन्न चि ङिन्न' इति व्याख्यानात्; युयाताम् युयुः। यूयात्, यूयास्ताम्। यूयासुः। अयावीत्। अयविष्यत्।

---

१. यदि आर्धधातुक यह विषयसप्तमी न हो तो परस्पतमी होने स आर्धधातुक के परे रहते 'वध' आदेश होगा। ऐसी दशा में आर्धधातुक के उपदेशकाल में 'वध' के न होने से 'अतो लोपः' की अकारलोप में प्रवत्ति न होगी। इस प्रकार 'आर्धधातुक' में विषयसप्तमी का फल वध के अकार का लोप है।

२. अकार के लोप का लिङ् में विशेष फल नहीं। 'लुङ' में अकार लोप के स्थानिवद्भाव से उपधा में अकार न मिलने के कारण 'अतो हलादेर्लघोः' से वैकल्पिक वद्धि नहीं हो पाती। इसलिये अकारलोप का तथा वध को अदन्त करने का फल'वद्धि का अभाव' सिद्ध होता है।

व्याख्याः लुक् के विषय् में धातु के उकार को वद्धि हो, पित् हलादि सार्वधातुक प्रत्यय पर होने पर, परन्तु अभ्यस्त संज्ञक धातु के उकार को न हो।

इस सूत्र में 'नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके ७।३।८७।।' ' इस पूर्व सूत्र से 'नाभ्यस्तस्य' इसकी अनुवत्ति आती है। अतः अभ्यस्त–संज्ञक धातु की वद्धि का निषेध किया गया है, इसका फल जुहोत्यादिगण की हु धातु के उकार को वद्धि न होना है। इसीलिये यहाँ 'जुहोति' में वद्धि नहीं हुई।

पित् सार्वधातुक प्रत्यय तिप्, सिप् और मिप् है और ये हलादि भी हैं। इन्हीं के परे रहते वद्धि होती है। प्राप्त सार्वधातुक गुण का बाध इससे होता है। शेष सार्वधातुक प्रत्यय अपित् हैं, अतः वहाँ वद्धि नहीं होती। ङिद्वत होने के कारण निषेध हो जाने से गुण भी नहीं होता।

यौति—लट् के तिप् में पित् होने से प्रकृत सूत्र से वद्धि होकर रूप बनता है।

युतः— तस् में अपित् सार्वधातुक होने से वद्धि नहीं हुई, और न गुण ही।

युवन्ति—झि में भी अपित् होने से वद्धि नहीं हुई उवङ् आदेश हुआ।

यौषि—सिप् के पित् होने से वद्धि हुई।

युथः, युथ—थस् और थ के पित् न होने से वद्धि नहीं हुई।

यौमि-मिप् के पित् होने से वद्धि हुई।

युवः, युमः—वस् और मस् के पित् न होने से वद्धि नहीं हुई।

लिट् में—प्र० युयाव, युयुवतुः, युयुवुः। म०युयविथ, युयुवथुः, युयुव। उ० युयाव–युयव, युयुविव, युयुविम।

अतुस् आदि कित् प्रत्ययों में गुण निषेध होने से उवङ् होता है। 'ऊद्–ऋदन्तै–यौति–' इत्यादि सेट् कारिका में पाढ़ी होने से यह धातु सेट् (उदात्तोपदेश) है, अतः थल् व, और म में इट् होता है।

यविता, यविष्यति—लुट् और ऌट् में भी इट् और गुण तथा अवादेश होकर रूप बनते हैं।

यौतु—लोट् के प्रथम के एकवचन में 'तु' पित् होने से वद्धि ही होती है।

प्र० यौतु–युतात्, युताम्, युवन्तु। म० युहि–युतात्, युतम्, युत। उ० यवानि, यवाव, यवाम। 'हि' के अपित् होने से वद्धि नहीं होती और ङिद्वत् होने से गुण भी नहीं होता। उत्तम में आट् होने पर गुण होता है। आट् पित् तो है, पर हलादि नहीं, अतः वद्धि नहीं होती।

लङ् में—तिप और सिप् में तो वद्धि होगी। पर मिप् में अम् आदेश हो जाने पर हलादि प्रत्यय न मिलने से नहीं होती।

प्र० अयौत्, आयुताम्, अयुवन्। म० अयौः, अयुतम्, अयुत। अयवम्, अयुव, अयुम।

युयात्—विधिलिङ् में 'युयात्' आदि रूप बनते हैं।

इह उत इति— यहाँ वद्धि नहीं होती, क्योंकि यासुट् ङित् हैं यद्यपि वह तिप् को होता है अतः उसे भी पित् होना चाहिये, तथापि यासुट् को विशेष रूप से 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' इस सूत्र से ङित्व विधान गया है। अतः विशेषरूप से विहित ङित्त्व से सामान्य पित्त्व का बाध हो जाता है इस आशय का भाष्यकार का यह वचन है—ङिच्च पिन्न, पिच्च, ङिन्न रूप सिद्ध होते हैं।

लुङ् में—'सिचि वद्धिः परस्मैपदेषु' से उकार को 'औ वद्धि होने पर 'आव' होकर रूप बनते हैं—प्र० अयावीत्, अयाविष्टाम्, अया विष्टुः। म० अयावीः, अयाविष्टम, अयाविष्ट। उ० अयाविषम्, अयाविष्व, अयाविष्म। तिप् और सिप् में अपक्त हल होने से 'अस्तिसिचोपक्त से इट् आगम होने पर 'इट ईटि' से सिच् का लोप हो जाता है। अन्यत्र सिच विद्यमान रहता है।

अयविष्यत्—स्य में इट् होकर 'अयविष्यत्' आदि रूप बनते हैं।

---

३. लुक् का विषय अदादिगण है। लुक् तो अभाव रूप होता है, उसका परे रहना तो हो नहीं सकता, अतः 'लुकि' को विषयसप्तमी कहा गया है।

या प्रापणे 4

याति, यातः यान्ति। ययौ। याता यास्यति। यातु। अयात्, अयाताम्।

(पहुँचना, जाना)

ययौ—यहाँ अकारान्त होने से 'आत औ णलः' सूत्र से णल् को 'औ आदेश होता है। तब वद्धि आदि होकर 'ययौ' रूप बनता है।

प्र० ययौ, ययतुः, ययुः। म० ययिथ—ययाथ, ययथुः, यय। उ० ययौ, ययिव, ययिम।

यहाँ अतुस् आदि अजादि कित् प्रत्ययों के परे रहते 'आतो लोप इटि च' सूत्र से आकार का लोप होता है। अनिट् अजन्त होने से थल् में वैकल्पिक इट् होता है। इट् पक्ष में आकार का लोप होता है। इडभापवक्ष में अजादि न होने से नहीं होता।

लङः शाकटायनस्यैव 3.4.111.

आदन्तात् परस्य लङो झेर्जुस् वा स्यात्। अयुः, अयान्।

व्याख्याः आदन्त से परे लङ् के झि को जुस् हो विकल्प से।

अयुः—या धातु आकारान्त है, अतः इससे परे झि को 'जुस्' हुआ। फिर 'उस्यपदान्तात्' से आकार का पररूप होकर रूप बना।

अयान्— उस् के अभाव पक्ष में 'झ' को अन्त् आदेश और तकार का संयोगान्त लोप होकर रूप बनता है।

अयासीत्—लुङ् में 'यम—रम—नमातां सक् च' सूत्र से इट् और सक् होता है।

शेष रूप—प्र० अयासीत्, अयासिष्टाम्, अयासिषुः। अयासीः अयासिटम् अयासिष्ट। अयासिषम् अयासिष्व, अयासिष्म।

यहाँ पर उल्लिखित शेष सभी धातुओं के रूप आकारान्त होने से 'या' के समान बनेंगे।

वा गतिगन्धनयोः

वा (चलना[१] सूचित करना)

वाति। ववौ। वाता। वास्यति। वातु। अवात्, अवु—अवान्। वायात्। वायात्। अवासी। अवास्यत्।

'निर्' उपसर्ग के योग से इनका 'शान्त होना' अर्थ होता है। जैसे—'दीपो निर्वाति—दिया बुझता है—शान्त होता है

भा दीप्तौ

(चमकना)—भाति। बभौ। भाता। भास्यति। भातु। अभात्, अभुः—अभान्। भायात्। भायात्। अभासीत्। अभास्यत्।

आभाति और विभाति आदि में उपसर्ग के योग से अर्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं आता परन्तु चमकने की विशेषता प्रतीत होती है।

ष्णा[१] (नहाना)—स्नाति। सस्नौ। स्नाता। स्नास्यति। स्नातु अस्नात्। नायात्। स्नेयात्[२], स्नायात्। अस्नासीत्। अस्नास्यत्।

ष्णा शौचे

व्याख्याः 'नि' उपसर्ग के योग में इसका अर्थ 'प्रवीण होना ' होता है। यथा न्ष्णिाति—प्रवीणता प्राप्त करता है।

श्रा पाके

व्याख्याः श्रा (पकाना)—श्राति। शश्रौ। श्राता। श्रास्यति। श्रातु। अश्रात्। श्रायात्। श्रेयात्, श्रायात्। अश्रासीत्। अश्रास्यत्।

१. इसका प्रयोग हवा के 'चलने' अर्थ में होता है न कि सामान्य रूप से यथा—वायुर्वाति—हवा चलती है।

द्रा कुत्सायां गतौ

व्याख्याः (बुरी चाल चलना)—द्राति। दद्रौ। द्राता। द्रास्यति। द्रातु। अद्रात्। द्रायात्। द्रायात्। द्रेयात्, द्रायात्। अद्रासीत्। अद्रास्यत।

'नि' उपसर्ग के योग में इसका अर्थ 'सोना' होता है। यथा—निद्राति = सोता है। उदाहरण—'निद्राति नान्तःशुचा' 'तदा निदद्रावुपपल्वलं खगः'।

प्सा भक्षणे

व्याख्याः प्सा (खाना)—प्साति। पप्सौ। प्साता। प्सास्यति। प्सातु। अप्सात्। प्सायात्। प्सेयात्, प्सायात्। अप्सासीत्।अप्सास्यत्।

रा दाने

व्याख्याः रा (देना)— राति। ररौ। राता। रास्यति। रातु। अरात्। रायात्। रायात्। अरासीत्। अरास्यत्।

ला आदाने

व्याख्याः ला (लेना)— लाति। ललौ। लाता। लास्यति। लातु। अलात्। लायात्। लायात्। अलासीत्। अलास्यत्।

दाप् लवने

व्याख्याः दाप् (काटना)—दाति। ददौ। दाता। दास्यति। दातु। अदात्। दायात्। दायात्[३]। अदासीत्। अदास्यत्।

पा रक्षणे

व्याख्याः पा (रक्षा करना)—पाति। पपौ। पाता। पास्यति। पातु। अपात्।पायात्। पायात्[४]। अपासीत्। अपास्यत्।

ख्या प्रकथने

अयं सार्वधातुक एव प्रयोक्तव्यः.

व्याख्याः ख्या[५] (कहना)—ख्याति। ख्यातु। अख्यात् ख्यायात्।

अयमिति— इस धातु का सार्वधातुक में ही प्रयोग करना चाहिये।

विद ज्ञाने

व्याख्याः (जानना सेट्)

विदो लटो वा 3.4.83

वेत्तेर्लटः परस्मैपदानां णलादयो वा स्युः। वेद, विदतुः, विदुः। वेत्थ, विदथुः, विद। वेद-विद, विद्व, विद्म। पक्षे-वेत्ति, वित्तः, विदन्ति।

व्याख्याः विद् धातु (अदादिगणीय) से परे लट् के परस्मैपद प्रत्ययों को णल् आदि आदेश हों विकल्प से।

वेद—णल् आदि आदेश होने पर वेद आदि रूप बनते हैं। यहाँ द्वित्व होता, क्योंकि द्वित्व का विधान लिट् में ही

---

१. इस धातु का अर्थ शौच (शुद्धि) है, वह सब प्रकार की हो सकती है, तथापि यहाँ स्नान—नहाना ही अर्थ अभिप्रेत है।

२. संयोगादि होने से आशीर्लिङ् में 'वान्यस्य संयोगादेः' सूत्र से एत्व विकल्प होता है। इसी प्रकार श्रा, द्रा और प्सा में भी समझना चाहिये।

३. 'दाधा ध्वदाप्' सूत्र में 'दाप्' की घुसंज्ञा का निषेध होने से 'दर्लिङ' से यहाँ एत्व नहीं हुआ।

४. 'घुमास्थागापा—' आद्रि में 'गापविह इणाादेशपिबती गह्यते' इस बचन से भ्वादि 'पा' धातु ही ग्रहण होने के कारण यहाँ पूर्वोक्त एत्व नहीं हुआ। लुङ् लकार में 'गति—स्या' सूत्र से सिच् का लोप नहीं होता।

५. वि और आङ्—इन दोनों उपसर्गों के योग से व्याख्या करना अर्थ होता है। यथा७व्याख्याति। केवल वि और प्र के योग में प्रसिद्ध होना अर्थ होता है, यथा—बिख्याति, प्रख्याति।

किया गया है—'लिटि धातोरनभ्यासस्य' इति। पक्ष में वेत्ति आदि रूप बनते हें 'वस्' और 'मस्' में दोनों पक्षों में एक जैसे रूप बनते हैं, केवल विसर्गों का अन्तर पड़ता है। आदेश पक्ष में विसर्गरहित—विद्व, विद्म और अभावपक्ष में विसर्ग सहित—विद्वः, विद्मः।

उष-विद-जागभ्योन्यतरस्याम् 3.1.38

एभ्यो लिटि आम् वा स्यात्। विदेरदन्तप्रतिज्ञानाद् आमि न गुणः—विदाचकार। विवेद। वेदिता। वेदिष्यति।

व्याख्याः उष्। (जलाना), विद (जानना) और जाग (जागना) इन धातुओं से लिट् परे रहते 'आम्' हो विकल्प से।

विदेरिति—'विद' धातु को अकारान्त माना गया है। 'अतो लोपः' से उस अकार का लोप हो जाता हैं अतः अकारलोप के स्थानिवn~Hkाव होने से 'लघूपध' न मिलने के कारण आम् परे रहते लघूपध गुण नहीं होता।

विदाचकार — आम् होने पर 'कृ' का अनुप्रयोग होकर रूप बनते हैं। 'आम्' के अभावपक्ष में –प्र० विवेद, विविदतुः, विविदुः। म० विवेदिथ, विविदथुः, विविद। उ० विवेद, विविदिव, विविदिम। ये रूप बनते हें। यह सेट् धातु है, क्योंकि अनिट् धातुओं में दिवादिगण का 'विद सत्तायाम्' धातु गिना गया है, यह नहीं। अतः इसको लिट् में भी नित्य ही इट् होता है।

वेदिता, वेदिष्यति—तास् और स्य को भी अत एव इट् होता है।

'विदाङ्कुर्वन्तु' इत्यन्यतरस्याम् 3.1.41

वेत्तेर्लोटि आम्, गुणाभावो, लोटो लुक्, लोडन्तकरोत्यनुप्रयोगाश्च वा निपात्यते। पुरुषवचने न विवक्षिते।

व्याख्याः विद् धातु से लोट् परे रहते आम् होता है, आम् परे रहते लधूपध गुण नहीं होता, लोट् का लङ् होता हैं और लोडन्त 'कृ' धातु का अनुप्रयोग होता है। ये चारों कार्य विकल्प से निपातित होते हैं।

पुरुषेति—'विदाङ्कुर्वन्तु' में पुरुष और वचन विवक्षित नहीं अर्थात् यह न समझ लेना चाहिये कि प्रथम के बहुवचन में ये कार्य होते हें अपितु लोट के सभी पुरुषों और वचनों में ये चारों कार्य होते हैं।

तनादि-कृभ्य उः 3.1.79

तनादेः कृाश्च उः प्रत्ययः स्यात् शपोपवादः। विदाङ्करोतु।

व्याख्याः तनादि धातुओं से और कृा् धातु से 'उ' प्रत्यय हो।

शप्— का अपवाद है।

विदाङ्करोतु—इससे शप् को बाधकर 'उ' प्रत्यय होने पर 'विदाम् कृ उ ति' यह अवस्था हुई। यहाँ 'उ' प्रत्यय के तिङ्–शित् भिन्न होने से आर्धधातुक होने के कारण तन्निमित्तक गुण ऋकार का होता है, तथा तिप् सार्वधातुक है, अतः तन्निमित्तक गुण 'उ' प्रत्यय को हो जाता है। 'ति' के इकार को उकार सामान्य प्रक्रिया के अनुसार होता है। 'म्' को अनुस्वार और उसका परसवर्ण भी यथाशास्त्र उक्त सिद्ध होता है।

तातङ् पक्ष में विदाङ्कर् ड तात्' इस दशा में 'कृ' के ऋकार को तो 'उ' आर्धधातुनिमित्तक गुण हो जाता है। परन्तु तातङ् के ङित् होने से 'उ' को गुण नहीं हो पाता। तब 'विदाङ्कर्उतात्' यह अवस्था होती बनती है।

अत उत् सार्वधातुके 6.4.10

'उ' प्रत्ययान्तस्य कृोत उत् सार्वधातुके क्ङिति। विदाङ्कुरुतात्, विदाङ्कुरुताम्, विदाङ्कुर्वन्तु। विदाङ्कुरु।विदाङ्करवाणि। अवेत्, अवित्तम्, अविदुः।

व्याख्याः 'उ' प्रत्ययान्त 'कृा्' धातु के अकार को उकार हो कित् और ङित् सार्वधातुक परे रहते।

विदाङ्कुरुतात्—तातङ् सार्वधातुक है उसके परे रहते 'उ' प्रत्ययान्त होने से 'कृा' के अकार को उकार होकर उक्त सिद्ध होता है।

इसी प्रकार 'ताम्, तम् और त' में अकार को उकार होकर विदाङ्कुरुताम्, विदाङ्कुरुतम् और विदाङ्कुरुत रूप सिद्ध होते हैं।

विदुाङ्कुर्वन्तु—'अन्तु' में उकार को यण् होता है, और ङित् सार्वधातुक पर होने से पूर्ववत् अकार को उकार होने से रूप बनता है।

विदाङ्कुरु—'सिप्' में 'हि' का 'उतश्च प्रत्ययादसंयोगपूर्वात्' से लोप होकर उक्त रूप सिद्ध होता है।

विदाङ्करवाणि—उत्तम में 'आडुत्तमस्य पिच्च' से पित् आट् आगम होता है। अतः 'अत उत् सार्वधातुके' सूत्र से अकार को उकार नहीं होता। पित् होने से 'उ' कार को सार्वधातुक गुण भी हो जाता है। तब 'ओ' को 'अव्' आदेश होने पर विदाङ्करवाणि, विदाङ्करवाव, विदाङ्करवाम सिद्ध होते हैं।

इन चारों कार्यों के अभाव पक्ष में —प्र० वेत्तु—वित्तात्, वित्ताम, विदन्तु। म० विद्धि—वित्तात्, वित्तम्, वित्त। म० वेदानि वेदाव, वेदाम।

'वेदानि' आदि उत्तम पुरुष के रूपों में 'आड् उत्तमस्य पिच्च' सूत्र से आट् आगम होता है और वह पित् भी बताया गया है, अतः लधूपध गुण हो जाने से रूप सिद्ध होते हें। इनमें आट की प्रतीति स्पष्ट होती है।

अवेत्—लङ् के प्रथम के एकवचन में 'अवेद् त्' इस दशा में 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपक्तं हल्' सूत्र से तिप् के अपक्त तकार का हल् दकार से परे होने के कारण लोप हो जाता है। तब दकार को 'वावसाने' से वैकल्पिक चर् होकर 'अवेत्' और 'अवेद्' रूप बनते हैं।

अवित्तम्—द्विवचन में अपित् सार्वधातुक होने से गुण नहीं होता।

अविदुः—बहुवचन में 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' से 'झि' को 'जुस' होकर 'अविदुः' बनता है।

मध्यम के एकवचन में 'अवेद् स्' इस दशा में सिप् के अपक्त सकार का हल्ङ्यादिलोप हो जाता हैं तब 'अवेद्' यह अवस्था होती है।

दश्च 8.2.75

धातोर्दस्य पदान्तस्य सिपि परे रुर्वा। अवेः-अवेत्। विद्यात्, विद्याताम्। विद्यास्ताम्। अवेदीत्। अवेदिष्यत्।

व्याख्याः धातु के पदान्त दकार को सिप् परे रहते 'रु' विकल्प से हो।

अवेः—इससे दकार को 'रु' होने पर विसर्ग होकर 'अवेः' रूप सिद्ध होता है। अभावपक्ष में वैकल्पिक चर् होकर 'अवेत्, अवेद्' रूप तिप् के समान होते हैं। अवेदम्, अविद्व, अविद्म—ये रूप उत्तम में बनते हैं।

लुङ में—प्र० अवेदीत्, अवेदिष्टाम्, अवेदिषुः। म० अवेदीः, अवेदिष्टम्, अवेदिष्ट। उ० अवेदिषम्, अवेदिष्व, अवेदष्मि।

अस् भुवि अस्ति.

(होना)

श्नसोरल्लोपः 6.4.111

श्नस्य, अस्तेश्च अतो लोपः सार्वधातुके किति ङिति। स्तः, सन्ति। असि, स्थः, स्थ। अस्मि, स्वः, स्मः।

व्याख्याः श्ना प्रत्यय—क्र्यादिगण के विकरण और अस् धातु के अकार का लोप हो सार्वधातुक कित् प्रत्यय परे रहते।

तिप्, सिप् और मिप् पित् हैं। इनके परे रहते जकार का लोप नहीं होता, शेष तस् आदि प्रत्यय अपित् सार्वधातुक होने से 'सार्वधातुकमपित्' से ङिद्वत् हैं, अतः उनके परे रहते लोप हो जाता है। इसलिए स्तः, सन्ति आदि रूप बनते हैं।

असि—'सिप' परे रहते 'तासस्त्योर्लोपः' से अस् के सकार का लोप हो जाता है, तब 'असि' रूप सिद्ध होता है।

उपसर्ग-प्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः 8.3.87

उपसर्गेणः प्रादुसश्चास्तेः सस्य षो यकारेचि च परे। निष्यात्। प्रनि-षन्ति। प्रादु-षन्ति। यच्परः किम्-अभि-स्तः।

व्याख्याः उपसर्ग के इण् और 'प्रादुस्' अव्यय से परे अस् धातु के सकार को षकार हो यकार और अच् परे रहते।

निष्यात्—'निस्यात्' इस अवस्था में उपसर्ग 'नि' के इकार इण् से परे अस् धातु के सकार को षकार होकर 'निष्यात्' रूप बनता है। यहाँ स्थानी सकार से यकार परे है। 'स्यात्' रूप अस् धातु के विधिलिङ् प्रथम के एकवचन का है।

प्रनिषन्ति—'प्रनिसन्ति' इस अवस्था में 'सन्ति' रूप अस् का है। इस सकार का उपसर्ग 'नि' के सकार इण् से परे होने के कारण षकार हुआ। यहाँ सकार से अच अकार परे है।

प्रादुःषन्ति— 'प्रादुःसन्ति' इस दशा में 'प्रादुस्' अव्यय से परे अस् के सकार को षकार हो जाता है, उससे परे अच् अकार है।

यच्पर इति—'सकार से परे यकार या अच् होना चाहिये'— ऐसा कयों कहा? इसलिये कि 'अभिस्तः' इत्यादि स्थलों में सूत्र की प्रवत्ति न हो। यहाँ 'अभि' उपसर्ग है। 'स्तः' अस् के लट् प्र० पु० द्विवचन का रूप है, इस में अस् धातु का सकार तो है, पर इससे परे तकार है, यकार या अच् नहीं।

अस्तेर्भूः 2.4.52

आर्धधातुके। बभूव। भविता। भविष्यति। अस्तु-स्तात, स्ताम्, सन्तु।

व्याख्याः आर्धधातुक के विषय में 'अस्' धातु को 'भू' आदेश हो।

इस सूत्र से आर्धधातुक लकारों में 'अस्' को 'भू' आदेश हो जाने से उसी के समान रूप बनते हैं।

लोट् में—अस्तु। तातङ् पक्ष में ङिद्वद्भाव होने से अकार का लोप हो जाता है, अतः स्तात् रूप बनता है। ताम् और अन्तु में भी ङिद्वद्भाव होने से अकार का लोप होकर स्ताम् और सन्तु रूप सिद्ध होते हैं।

मध्यम के एकवचन में सिप् को 'हि' आदेश होने पर 'अस् हि' यह अवस्था होती है। यहाँ 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' सूत्र से झल् से परे होने के कारण 'हि' को 'धि' प्राप्त होता है। पर होने से अग्रिम सूत्र उसे बाध लेता है।

ध्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च 6.4.119.

घोरस्तेश्च एत्वं स्याद् हौ परे अभ्यासलोपश्च। एतस्यासिद्धत्वाद् हेर्धिः। 'श्नसोः-' इत्यल्लोपः। तातङ्पक्ष एत्वं न, परेण तातङा बाधात्। एधि-स्तात्, स्तम्, स्त। असानि, असाव, असाम् आसीत्, आस्ताम्, आसन्। स्यात्, स्याताम्, स्युः। भूयात्। अभूत्। अभविष्यत्।

व्याख्याः घुसंज्ञक और अस् धातु को एकार और अभ्यास का लोप भी हो 'हि' पर होने पर।

अलोन्त्यपरिभाषा से एकार अन्त्यवर्ण को होता है। 'अस्' के अन्त्यवर्ण सकार को और घुसंज्ञक 'दा, धा' आदि धातुओं में ही होता है, अस् के साथ असंभव होने से इसका अवयव नहीं है।

इस प्रकार इस सूत्र के दो विधेय हैं—१ एकार आदेश। २ अभ्यास का लोप।

एत्वस्येति— इस सूत्र के द्वारा विहित एत्व के आभीय कार्य होने से असिद्ध होने पर सकार झल् मिल जाता है, अतः झल् से पर होने के कारण 'हुझलभ्यो हेर्धिः' से 'हि' को 'धि' आदेश हो जाता है।

एधि—'अस् हि' यहाँ 'हि' के अपित् सार्वधातुक होने से ङिद्वद्भाव हो जाता है, तब 'श्नसोरल्लोपः' सूत्र से अकार का लोप होने पर 'स्+हि' यह स्थिति बनती है। यहाँ अन्त्यवर्ण सकार को प्रकृत सूत्र से 'एकार' होजाता है। तब आभीय होने से एकार के असिद्ध होने के कारण धातु को मानकर उससे परे ' हि' को 'धि' आदेश होने पर से 'एधि' रूप सिद्ध होता है।

स्तात्— तातङ् पक्ष में एकार नहीं होता, क्योंकि तातङ् आदेश पर होने से इसे बाध लेता है। पहले तातङ् आदेश होने से फिर 'हि' परे न मिलने के कारण 'एकार' नहीं होता।

असानि, असाव, असाम—उत्तम में आट् का आगम होता है, वह पित् होता है। अतः अकार का लोप नहीं होता।

आसीत्—लङ् में प्रथम के एकवचन में 'आ अस् त्' इस दशा में 'अस्तिसिचोपृक्ते' से 'ईट्' आगम होकर 'आसीत्'

रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार सिप् में भी इकार का लोप होने पर अपक्त होने से 'इट्' का आगम होकर 'आसीः' रूप बनता है।

आस्ताम—आदि में आकार आट् का है। धातु के अकार का तो 'श्नसोरल्लोपः से लोप हो जाता है।

शेष रूप—आसीः, आस्तम्, आस्त। आसम्, आस्व, आस्म।

विधिलिङ्—स्यात्, स्याताम्, स्युः। स्याः, स्यातम्, स्यात। स्याम् , स्याव, स्याम।

विधिलिङ् के इन प्रयोगों में यासुट् के ङित् होने के कारण अकार का लोप होता है।

आशीर्लिङ् आदि शेष लकारों में आर्धधातुक होने से 'भू' आदेश होता हैं 'भू' के समान रूप बनते हैं।

इण् गतौ

एति, इतः

व्याख्याः जाना।

एति—सार्वधातुक गुण होकर रूप सिद्ध हुआ।

इतः—तस् के अपित होने से ङिद्वत् होने के कारण गुण नहीं हुआ।

इणो यण 6.4.81

अजादौ प्रत्यये परे. यन्ति.

व्याख्याः इण् धातु के डकार को यण हो अजादि प्रत्यय परे होने पर।

यन्ति—'इ+अन्ति' इस दशा में 'अचि श्नुधातुभ्रुवां य्वोरिङुवङौ' सूत्र से इयङ् प्राप्त है, उसका अपवाद यह यण् आदेश है। 'इ' को यण् यकार होने से 'यन्ति' रूप सिद्ध होता है।

शेष रूप—म० एषि, इथः, इथ। उ० एमि, इवः, इमः।

अभ्यासस्यासवर्णे 6.4.78

अभ्यासस्य इवर्णोवर्णयोरियङुवङौ स्तोसवर्णेचि । इयाय।

व्याख्याः अभ्यास के इवर्ण और उवर्ण को क्रम से इयङ् और उवङ् आदेश होते हैं असयर्ण अच् परे होने पर।

इयाय—इण् धातु से णल् में 'इ इ अ' ऐसी अवस्था में 'अचो ञ्णिति' से अभ्यास के उत्तरखण्ड इकार को वद्धि ऐकार और उसको 'आय्' आदेश होने पर 'इ आय् अ' इस दशा के होने पर प्रकृत सूत्र से असवर्ण अच् आकार परे होने से अभ्यास के इकार को 'इयङ् आदेश हुआ। तब 'इयाय' रूप सिद्ध हुआ।

अतुस् में द्वित्व होने पर कित् होने से गुण नहीं होता। अतः 'इ इ अतुस्' इस दशा में उत्तरखण्ड के इकार को 'इणो यण्' से यण् यकार होता है, तब 'इय् अतुस्' यह स्थिति होती है।

दीर्घ इणः किति 7.4.69

इणोभ्यासस्य दीर्घ स्यात् किति लिटि। ईयतुः ईयुः। इययिथ, इयेथ। एता। एष्यति। एतु। ऐत्, ऐताम्, आयन्। इयात् ईयात्।

व्याख्याः इण् धातु के अभ्यास को दीर्घ हो कित् लिट् परे होने पर।

ईयतुः—'इ य् अतुस्' इस स्थिति में कित् लिट् अतुस् परे होने से इण् धातु के अभ्यासरूप 'इकार' को दीर्घ होकर 'ईयतुः' रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'उस्' में 'ईयुः' रूप बनता है।

इययिथ—थल् में पित् होने से गुण होकर 'इ ए थ' यह दशा होती है। अनिट् अजन्त होने से वैकल्पिक इट् होता है। अभ्यास इकार को असवर्ण अच् परे होने से इयङ् आदेश हो जाता है। इट् पक्ष में 'ए' को 'अय्' आदेश होकर 'इययिथ' रूप बनता है। इडभावपक्ष में 'इयेथ'।

अन्य रूप—ईयथुः, ईयुः। इयाय—इयय, ईयिव, ईयिम।

लोट् में—एतु—इतात्, इताम, इयन्तु। इहि—इतात्, इतम्, इत। अयानि, अयाव, अयाम।

'हि' के अपित् होने से ङिद्वत् होने के कारण उसके परे रहते गुण नहीं होता। उत्तम में आट् के पित् होने से सार्वधातुक गुण हो जाता है, तब 'ए' कार को 'अय्' आदेश होता है।

ऐत्—लङ् के तिप् के इकार के लोप और आट् के साथ धातु के इकार को वद्धि एकादेश होने से यह रूप सिद्ध होता है।

आयन्—लङ् के प्रथम पुरुष के बहुवचन झि में इकार का लोप तथा झकार को 'अन्त्' आदेश होने पर 'इ अन्' इस स्थिति में इणो यण्' से यण् होता है। तब 'यन्' बनने पर आभीय होने के कारण यण् के असिद्ध होने से अजादि मानकर 'आट्' होता है।

लङ् के शेष रूप—म० ऐः, ऐतम्, ऐत। उ० आयम्, ऐव, ऐम।

'आयम्' में भी आयन् के समान पहले इकार को यण् होता है, बाद में आभीय होने के कारण यण् के असिद्वत् होने से अजादि मानकर 'आट्' होता है।

विधिलिङ में—प्र० इयात्, इयाताम् इयुः। म० इयाः, इयातम्, इयात। उ० इयाम्, इयाव् इयाम।

ईयात्—आशीर्लिङ् में 'अकृत्सार्वधातुकयोः' से दीर्घ होकर—ईयात् ईयास्ताम्, इयासुः आदि रूप सिद्ध होते हैं।

एतेर्लिङि 7.4.24

उपसार्गात् परस्य इणोणो ह्रस्व आर्धधातुके किति लिङि। निरियात्। (प०) 'उभयत आश्रयणे नान्तादिवत्-' अभीयात। अण, किम्-समेयात्।

व्याख्याः उपसर्ग से परे इण् धातु के अण् को ह्रस्व हो आर्धधातुक कित् लिङ् परे होने पर।

निरियात्—'निर् इयात्' इस दशा में आशीर्लिङ् का होने से 'ईयात्' आर्धधातुक कित् लिङ् है। उसके परे रहते इण के अण 'ई' कार को उपसर्ग निर् से परे होने के कारण ह्रस्व होकर 'निरियात्' रूप सिद्ध होता है।

उभयत इति—दोनों ओर से आश्रयण करने में अन्तादिद्भाव नहीं होता अर्थात् पूर्ववद्भाव और अन्तबद्भाव दोनों एक साथ नहीं होते।

अभीयात्— यहाँ उक्त परिभाषा के बल से ह्रस्व नहीं हो पाता। क्योंकि यहाँ 'अभि+ईयात्' इस स्थिति में दीर्घ हुआ है। तब यदि 'अन्तादिवच्च' सूत्र से पूर्वान्तवद्भाव से 'अभी' में उपसर्गत्व धर्म लाया जाय तो आगे 'यात्' रह जाता है, यह इण् धातु नहीं अर्थात् आगे इण् धातु नहीं मिलता। यदि परादिवद्भाव से 'ईयात्' में इण्त्व लाया जाय तो इधर 'अम्' बचता है, वह उपसर्ग नहीं। यदि पूर्वान्तवद्भाव से एकादेशयुक्त 'अभी' में उपसर्गत्व और 'भीयात्' में इणधातुत्व दोनों लाये जायँ तो कार्य हो सकता है, परन्तु दोनों बातें एक साथ नहीं होती, क्योंकि दोनों परस्परविरोधी हैं। दोनों विरुद्ध कार्य एक साथ हो नहीं सकते। इसलिये यहाँ ह्रस्व नहीं होता।

अण इति—अण् को ह्रस्व होता है—यह क्यों कहा? इसलिये कि समेयात्' में सूत्र की प्रवत्ति न हो। 'सम्+आ ईयात्' इस स्थिति में गुण होकर 'सम्+एयात्' बना है। यहाँ सम् उपसर्ग है और एकादेशविशिष्ट 'एयात्' में 'अन्तादिवच्च' से परादिवद्भाव से इण्धातुत्व है, परन्तु पूर्व अण् नहीं मकार है। इसलिये ह्रस्व नहीं होता।

इणो गा लुङि 2.4.45

'गातिस्था-' इति सिचो लुक्—अगात्। ऐष्यत्।

व्याख्याः इण धातु को 'गा' आदेश हो लुङ् के विषय में।

'गा' आदेश पहले हो जाता है। तब अजादि न मिलने से आट् नहीं होता।

अगात्—इण् धातु के लुङ् के प्रथम पुरुष एकवचन में 'गा' आदेश होने पर 'अ गा स् त्' इस अवस्था में 'गातिस्था' इत्यादि सूत्र से 'सिच्' का लोप होने पर 'अगात्' रूप सिद्ध होता है।

'गाति—स्था—' इस सूत्र में 'गा' से इण् के स्थान में होनेवाला आदेश 'गा' लिया जाता है इस बात को भ्वादिगण में बताया जा चुका है।

प्र० अगात्, अगाताम्, अगुः। म० अगाः, अगातम्, अगात। उ० अगाम्, अगाव, अगाम। 'अगुः' में सिच् होने पर 'आतः' सूत्र से झि को जुस् होता है और तब 'उस्यपदान्तात्' से आकार का पररूप।

लृङ् में प्र० ऐष्यत्, ऐष्यताम्, ऐष्यन्। म० ऐष्यः, ऐष्यतम्, ऐष्यत। उ० ऐष्यम्, ऐष्याव, ऐष्याम।

उपसर्ग के योग में—

अपैति = हटता है। अन्वेति = पीछे चलता है, सम्बन्ध करता है।

अवैति = जानता है। व्येति = विकृत होता है।

ऐति = आता है। अभ्येति = जानता है।

उदेति = उदय होता है। प्रत्येति = विश्वास करता है।

समुदेति = प्रकट होता है। अभ्युदेति = प्रकट होता है।

अभिप्रैति = अभिप्राय रखता है।

शीङ स्वप्ने

व्याख्याः सोना 'सेट्।'

शीङः सार्वधातुके गुणः 7.4.21

'क्ङिति च' इत्यस्यापवादः। शेते, शयाते।

व्याख्याः इति–शीङ् धातु को गुण हो सार्वधातुक प्रत्यय परे होने पर।

क्ङितोति—शीङ् धातु ङित् होने से आत्मनेपदी है। अतः आत्मनेपद के 'त' आदि प्रत्यय उससे परे आते हैं। वे अपित् होने से 'सार्वधातुकमपित्' से सार्वधातुक लकारों में ङिद्वत् होते हैं। उनके परे रहते 'क्ङिति च' से गुण का निषेध प्राप्त होता है। उसका अपवाद यह सूत्र है।

शेते—लट् के त में टि को एकार होने पर 'शी ते' इस अवस्था में सार्वधातुक 'त' प्रत्यय परे होने से 'ई' कार को प्रकृत सूत्र से गुण एकार होकर 'शेते' रूप सिद्ध होता है।

शयाते—'आताम्' में भी ईकार को एकार गुण होता है। एकार को 'अय्' आदेश हो जाता है। तथा टि 'आम्' को एकार होने पर 'शयाते' रूप बनता है।

झ् को 'आत्मनेपदेष्वनतः' से 'अत्' आदेश होता है। टि को एकार तथा 'शीङ् सार्वधातुके गुणः' से गुण होकर 'शे अते' यह अवस्था हुई।

शीङो रुट् 7.1.7

शीङः परस्य झादेशस्यातो रुडागमः स्यात्। शेरते; शेषे, शयाथे, शेध्वे; शये, शेवहे, शेमहे। शिश्ये, शिश्याते, शिश्यिरे। शयिता। शयिष्यते। शेताम्, शयाताम्, शेरताम्। अशेत्, अशयाताम्, अशेरत। शयीत, शयीयाताम्, शयीरन्। शयिषीष्ट। अशयिष्ट। अशयिष्यत।

व्याख्याः शीङ् से परे 'झ' के आदेश को रुट् आगम हो। शेरते रुट् आगम होने पर 'शेरते' रूप सिद्ध होता है। लट् के शेष रूपों में 'शीङः सार्वधातुके गुणः' सूत्र से गुण होता है।

शिश्ये––लिट् के 'एश्' में 'शी' के द्वित्व, अभ्यास को ह्रस्व और उत्तरखण्ड के 'ई' कार को यण् होकर 'शिश्ये' रूप सिद्ध होता है।

लिट के 'शेष रूप निम्नलिखित हैं—म० शिश्यिषे, शिश्याथो, शिश्यिढ्वेशिश्यिध्वे। उ० शिश्ये, शिश्यिवहे, शिश्यिमहे।

अजनत–सेट्कारिका में 'शीङ्' का ग्रहण है, अतः यह धातु सेट् है। बलादि आर्धधातुक को इसीलिये इट् होगा।

यहाँ ध्वम् में इण् यकार से परे इट् से परे होने के कारण 'ध्वम्' के धकार को 'विभाषेटः' सूत्र से ढकार विकल्प से होकर दो रूप बनते हैं।

शयिता—लुट् के प्र० पु० एकवचन में तास् आने पर इट् आगम, धातु के ईकार को आर्धधातुक गुण, अय् आदेश तिप् को 'डा' आदेश और डित्व सामर्थ्य से तास् की आस् टि का लोप होने पर रूप सिद्ध होता है।

शयिष्यते—लृट् में स्य को इट् आगम होता है। शेष कार्य यथावत् होता है।

लोट् में लट् के समान गुण होता है। 'झ' से रुट् का आम होता है। शेष रूप निम्नलिखित हैं—म० शेष्व, शयाथाम्, शेध्वम्। उ० शयै, शयावहै, शयामहै।

लङ् के शेष रूप—म० अशेथाः, अशायाथाम्, अशेध्वम्। उ० अशयि, अशेवहि, अशेमहि।

विधिलिङ् के शेष रूप— शयीथाः, शयीयाधाम्, शयीथ्वम्। उ० शयीय, शयीवहि, शयीमहि।

आशीर्लिङ्—प्र० शयिषीष्ट, शयिषीयास्ताम्, शयिषीरन्

म० शयिषीष्ठाः, शयिषीयास्थाम, शयिषीढ्वम्—शयिषीध्वम् उ० शयिषीय् शयिषीवहि, शयिषीमहि।

लुङ् में प्र० अशयिष्ट, अशयिषाताम्, अशयिषतै।

म० अशयिष्ठाः, अशयिषाथाम्, अशयिढ्वम—अशयिध्वम्।

उ० अशयिषि, अशयिष्वहि, अशयिष्महि।

यहाँ यह ध्यान रहे कि 'शीङ्' धातु सेट् है। 'ऊद्—ॠदन्तैः— इत्यादि कारिका में इसे सेट धातुओं में परिगणित किया है।

उपसर्ग के योग में—

संशेते, विशेते = संशय करता है। अनुशेते = अनुशेते = पश्चात्ताप करता है।

अधिशेते = लेटता है। अशिते = आशय रखता है।

इङ् अध्ययने

व्याख्याः पढ़ना (अनिट्)

इङिकावध्युपसर्गतो न व्यभिचरतः। अधीते, अधीयाते, अधीयते।

व्याख्याः इङिकाविति—इङ् धातु और 'इक् स्मरणे' धातु 'अधि'[1] उपसर्ग के बिना प्रयोग में नहीं आते अर्थात् इनके साथ सदा 'अधि' उपसर्ग रहता है।

इङ् धातु ङित् होने से आत्मनेपदी है।

अधीते—सवर्णदीर्घ होकर 'अधीते, अधीयाते, अधीयते' रूप सिद्ध होते हैं। 'आते' 'अते' में अजादि प्रत्यय परे होने से 'अचि श्नुघातु—' इत्यादि से इयङ् आदेश हो जाता है। तब सवर्ण दीर्घ होता है। गुण तो होता नहीं, क्योंकि अपित् होने से ये ङिद्वत् हैं।

शेष रूप ये हैं—म० अधीपे, आधीयाथे, अधीध्वे।

उ० अधीये, अधीवहे, अधीमहे।

गाङ् लिटि 2.4.49

इङो गाङ् स्यात् लिटि। अधिजगे, अधिजगाते, अधिजगिरे।

अध्येता। अध्येष्यते।

अधीताम्, अधीयाताम्, अधीयाताम्। अधीष्व, अधीयाथाम् अधीध्वम्। अध्ययै, अध्यावहै, अध्ययामहै।

अध्येत, अध्यैययाताम्, अध्यैयत। अध्यैथाः, अध्यैयाथाम्, अध्यैध्वम्। अध्यैयि, अध्यैवहि, अध्यैमहि।

अधीयीत, अधीयीयाताम्। अधीयीरन्। अध्येषीष्ट।

व्याख्याः इङ् धातु को 'गाङ्' आदेश हो लिट् परे होने पर (अथवा लिट् की विवक्षा में)

लावस्था में या लिट् की विवक्षा होने पर यह 'गाङ्' आदेश होता है।

अधिजगे—'गाङ्' आदेश होने पर 'गा' को द्वित्व होता है। अीयास को ह्रस्व और कुत्व भी होता है। तब 'आतो लोप इटि च' सूत्र से आकार का लोप होने पर रूप सिद्ध होता है।

प्रथमपुरुष के एश्, आते, इरेच प्रत्यय अजादि हैं। आथाम् और इट भी अजादि हैं। 'से, ण्वम् वह और महे' को क्रादिनियम से इट् होता है, इस प्रकार ये भी अजादि बन जाते हैं। अतः सभी के अजादि होने से उनके परे रहते 'आतो लोप इटि च' सूत्र से आकार का लोप होता है।

शेष रूप म० अधिजगिषे, अधिजगाथे, अधिजगिध्वे।

उ० अधिजगे, अधिजगिवहे, अधिजगिमहे।

अध्येता, अध्येष्यते—लुट् और लृट् में 'एता' और 'एष्यति' आदि रूप बनते हैं क्योंकि यह धातु अनिट् ही है।

लोट् लकार में अजादि प्रत्ययों में इयङ् आदेश होता है, तब 'अधि' के साथ सवर्णदीर्घ होता है, अन्यत्र हलादियों में केवल सवर्णदीर्घ होता है।

अध्ययै—उत्तम के एकवचन में अधि इ+इ, अधि इ+आ इ, अधि इ+ आ ऐ, अधि इ+ऐ, धि ए+ऐ, अधि अयै+अध यये। इस प्रकार रूप सिद्ध होता है। आट् ऐकार आदेश, वद्धि धातु के इकार को गुण, अय् आदेश और उपसर्ग के इकार को यण् कार्य यहाँ होते हैं।

अध्यया है, अध्ययामहै—द्विवचन और बहुवचन में भी इसी प्रकार वद्धि को छोड़कर सारे कार्य होने पर रूप सिद्ध होते हैं।

अध्यैत—लङ् में आट् और उसके आकार तथा धातु के इकार को 'आटश्च्' से वद्धि होकर 'ऐत' रूप बनता है। तब उपसर्ग के कार को यण् होकर 'अध्यैत' रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार अन्य रूप भी बनते हैं।

अधीयीत— विधिलिङ् में 'अधि इत' इस स्थिति में सीयुट, सुट्, दोनों सकारों का लोप और यकार का लोप किये जाने पर 'अधि इ ईत' इस दशा में 'सीयुट्' के अपित् सार्वधातुक होने से ङिद्वत् होने के कारण धातु के इकार को 'इयङ्' आदेश होता है। 'अधि इयीत' इस अवस्था में उपसर्ग के इकार तथा धातु के इकार को सवर्णदीर्घ होकर 'अधीयीत' यह रूप सिद्ध होता है।

अधीयीयाताम्—आताम्, में पूर्वाक्त सारे कार्य सीयुट् के यकार लोप को छोड़कर होते हैं। तब 'अधीयीयाताम्' रूप बनता है।

अधीयीरन्—'झ' को रन् आदेश होने पर यकार का लोप होने से पूर्ववत् सारे कार्य यथाक्रम से होकर 'अधीयीरन्' रूप बहुवचन में सिद्ध होता है।

शेष रूप भी इसीप्रकार सिद्ध होते हैं—म० अधीयीथाः, अधीयीयाथाम्, अधीयीध्वम्। उ० अधीयीय, अधीयीवहि, अधीयीमहि।

अध्येषीष्ट—आशीर्लिङ् में सीयुट सुट्, आर्धधातुक गुण, यण, और षत्व—होकर 'अध्येषीष्ट' रूप सिद्ध होता है।

आशीर्लिङ्—

प्र० अध्येषीष्ट, अध्येषीयास्ताम, अध्येषीरन्।

म० अध्येषीष्ठाः, अध्येषीयास्थाम् अध्येषीढ्वम्।

उ० अध्येषीय्, अध्येषीवहि, अध्येषीमहि।

विभाषा लुङ्-लृङोः 2.4.50

इङो गाङ् वा स्यात्।

---

१. पहले धातु से प्रत्यय के आने पर सारे कार्य हो जाते हैं। तब सिद्ध रूप के साथ उपसर्ग का सम्बन्ध होता है। यथा—'इते, इयाते, इयते' ये रूप लट् के पहले बन जाते हैं, तब 'अधि' उपसर्ग का योग होता है।

व्याख्याः इङ् धातु को गाङ् आदेश विकल्प से हो लुङ् और लृङ के विषय में।

लकार आने के पूर्व ही इङ् को इससे गाङ् आदेश होता है।

गाङ्-कुटादिभ्योणिन्ङित् 1.2.1

गाङादेशात् कुटादिभ्यश्च परेणितः प्रत्ययाः ङितः स्युः।

व्याख्याः 'गाङ्' आदेश और 'कुट[1]' आदि धातुओं से परे ञित् तथा णित् भिन्न प्रत्यय ङित् हों।

'अगा स् त' इस दशा में गाङ् आदेश से परे ञित् और णित् भिन्न सिच प्रत्यय है। यह ङित् हो जाता है।

घु-मा-स्था-गा-पा-जहाति-सां हलि 6.4.66

एषामात ईत् स्यात् हलादौ क्ङिति-आर्धधातुके। अध्यगीष्ट, अध्यैष्ट। अध्यगीष्यत्, अध्यैष्यत।

व्याख्याः घुसंज्ञक, मा (नापना), स्था (ठहरना), गा (पढ़ना), पा (पीना), ओहाक् (त्यागना) और षो (नाश करना)–इन धातुओं के आकार को ईकार हो हलादि कित् ङित् आर्धधातुक परे होने पर।

गा को छोड़कर अन्य धातुओं के उदाहरण कर्मवाच्य में यक् के कित् होने से मिलते हैं। जैसे –दा–दीयते। धा–धीयते। भा–भीयते। स्था–स्थीयते। पा–पीयते। हा–हीयते। षो–सीयते।

गा का उदाहरण यहीं इङ् के स्थान में 'गाङ्' आदेश होने पर मिलता है।

अध्यगीष्ट–लुङ् के प्र० पु० एक वचन में 'अ गा स् त' इस स्थिति में हलादि ङित् आर्धधातुक 'सिच्' के परे होने पर 'गा' के अकार को 'ई' कार होता है। तब षत्व यकार आदेश कर के रूप सिद्ध होता है।

सम्पूर्ण रूप–

प्र० अध्यगीष्ट, अध्यगीषाताम्,अध्यगीषत
म० अध्यगीष्ठाः, अध्यगीषाथाम,अध्यगीढ्वम्
उ० अध्यगीषि, अध्यगीष्वहि,अध्यगीष्महि

अध्यैष्ट

गाङ् के अभाव पक्ष में अधि या इस त इस स्थिति में इकार को गुण, आट् की वद्धि षत्व और ष्टुत्व–होने पर ऐष्ट, रूप बनता है, तब उपसर्ग के इकार को यण् होकर अध्यैष्ट रूप बनता है।

सम्पूर्ण रूप–

प्र० अध्यैष्टः,	अध्यैषाताम्,	अध्यैषत्।
म० अध्यैष्ठाः,	अध्यैषाथाम्,	अध्यैढ्वम।
उ० अध्यैषि,	अध्यैष्वहि,	अध्यैष्महि।

अध्य – लृङ् में गाङ् आदेश, 'गाङ्कुटादिभ्यः–' से स्य की ङित्त्व, 'घुमास्था' से ईत्त्व होकर 'अध्यगीष्यत' रूप बनता है।

सम्पूर्ण रूप–

प्र० अध्यगीष्यत	अध्यगीष्येताम्	अध्यगीष्यन्त
म० अध्यगीष्यथाः	अध्यगीष्येथाम्	अध्यगीष्यध्वम्
उ० अध्यगीष्ये	अध्यगीष्यावहि	अध्यगीष्यामहि

गाङ् आदेश के अभावपक्ष में –प० अध्यैष्यत, अध्यैष्येताम्, अध्यैष्यन्त। म० अध्यैष्यथाः, अध्यैष्येथाम्, अध्यैष्यध्वम्। उ० अध्यैष्ये, अध्यैष्यावहि, अध्यैष्यामहि।

'आताम्' और 'आथाम्' में अकार से परे होने के कारण आकार को 'आतो ङित' से इय् होकर उसके यकार का लोप होता है। तब 'स्य' के अन्त्य अकार और इय् के इकार को गुण एकादेश होता है।

---

१. 'कुट्' आदि गण तुदादिगण में आयगा।

दुह प्रपूरणे दोग्धि, दुग्धः, दुहन्ति; धोक्षि.

दुग्धे, दुहाते, दुहते; धुक्षे, दुहाथे, धुग्ध्वे; दुहे, दुह्वहे, दुह्महे।

दुदोह, दुदुहे। दोग्धा। धोक्ष्यति, धोक्ष्यते।

दोग्धु-दुग्धात्, दुग्धाम्, दुहन्तु; दुग्धि-दुग्धात्, दुग्धम्, दुग्ध; दोहानि, दोहाव, दोहाम।

दुग्धाम्, दुहाताम्, दुहताम्। धुक्ष्व, दुहाथाम्, धुग्ध्वम्। दोहै, दोहावहै, दोहामहै।

अधोक्, अदुग्धाम्, अदुहन्। अदोहम्, अदुग्ध, अदुहाताम्, अदुहत। अधुग्ध्वम्।

दुह्यात्, दुहीत।

व्याख्याः (दुहना)—दुह् धातु स्वरितेत् होने से उभयपदी है।

इसके रूपों की सिद्धि में 'दादेर्धातोधः' 'झलां जश् झशि' 'झषस्तथोर्धोधः' और 'एकाचो बशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः' इन चार सूत्रों की अत्यधिक आवश्यकता पड़ती है अर्थात् घ, ग, प्रत्यय के त और थ को ध तथा धातु के द को ध ये कार्य विशेष रूप से होते हें।

ध्यान रहना चाहिए कि प्रत्यय दो ही प्रकार के तो हैं–अजादि और हलादि।

अजादि प्रत्ययों के परे रहते तो उक्त कोई नहीं होते और न मकारादि तथा वकारादि प्रत्ययों के परे रहते ही।

हलादियों में झलादि अर्थात् तकारादि और थकरादि प्रत्ययों के परे रहते हकार को धकार, घकार को गकार तथा तकार और थकार को धकार आवश्यक होता है।

सकारादि प्रत्ययों के परे रहते घत्व होने पर भष्भाव से दकार को धकार भी होता है और इसके अतिरिक्त घकार को चर् ककार और सकार को मूर्धन्य षकार तथा क–ष के संयोग से क्ष होता है।

धकारादि केवल एक 'ध्वम्' प्रत्यय हैं उसके परे रहते हकार को घकार और उसकी गकार तथाा भष्भाव से दकार को धकार होता है।

लुट् लकार के दोनों पदों में तास् हो जाता है। अतः तकारादि प्रत्ययय होने से घत्व, गंत्व और तकार के स्थान में धत्व कार्य होते हैं।

लृट् और लृङ् में स्य आने से, आशीर्लिङ् आत्मनेपद में सीयुट् के सकार के लोप न होने से, लुङ–लकार में च्लि का 'क्स' आदेश हो जाने से तथा लट् के सिप् और से, लोट् के स्व में सकारादि प्रत्यय मिलते हैं। अतः इनमें घत्व भष्भाव, कत्व, षत्व, क्ष ये कार्य होते हैं।

'ध्वम्' के सभी स्थलों में घत्व, भष्भाव और गत्व होते हैं।

इन बातों का पूर्ण ध्यान रहेगा तो 'दुह्' के रूप बनाने कठिन न होंगे। मूल में अधिकांश आवश्यक रूप दे दिये गये हैं, अतः यहाँ देने की आवश्यकता नहीं।

लिङ्सिचावात्मनेपदेषु 1.2.11

इक्समीपाद् हलः परो झलादी लिङ्सिचौ कितौ स्तः, तिङि। धुक्षीष्ट।

व्याख्याः इक् के समीप स्थित हल् से परे झलादि लिङ् और सिच् कित् होते हैं, तिङ परे होने पर।

लिङ् और सिच् का झलादि होना इट् के होने न होने पर निर्भर है। दुह धातु अनिट् है, इसलिए यहाँ झलादि, लिङ् और सिच् मिल जायेंगे। विधिलिङ् आत्मनेपद में सीयुट के सकार का लोप हो जाने से झलादि नहीं रहता। परस्मैपद में यासुट् होता है; वहाँ भी झलादि नहीं मिलता। केवल आशीर्लिङ् आत्मनेपद में सीयुट् इट् न होने की दशा में झलादि लिङ् मिलता है। लुङ् में दुह् धातु से परे च्लि को क्स हो जाता है; अतः सिच् न मिलने से वहाँ भी प्रवत्ति न होगी। सिच् का उदाहरण आगे मिलेगा।

धुक्षीष्ट—दुह धातु में इक् उकार के समीप हल् हकार स्थित है। इससे परे झलादि लिङ् आत्मनेपद का आशीर्लिङ्

सीयुट्रहित है। अतः यह प्रकृत सूत्र से कित् हो जायगा। कित् होने से गुण का निषेध हो जायगा।

सम्पूर्ण रूप–

प्र० घुक्षीष्ट, धुक्षीयास्ताम्, धुक्षीरन्।

म० धुक्षीष्ठाः, धुक्षीयास्थाम, धुक्षीध्वम्।

उ० धुक्षीय, धुक्षीवहि, धुखीमहि।

शल इगुपधाद् अनिटः क्सः 3.1.45

इगुपधो यः शलन्तः, तस्मादनिटश्च्लेः 'क्स' आदेशः स्यात्। अधुक्षत।

व्याख्याः इगुपध जो शलन्त धातु, उस अनिट् धातु से परे 'च्लि' को 'क्स' आदेश हो।

'क्स' अदन्त है और ककार इत्संज्ञक है।

अधुक्षत—दुह् धातु का उपधा उकार इक् है, अन्त में हकार शल् है। अतः यह इगुपध शलन्त धातु है। अनिट् भी यह है ही। अतः इससे परे 'च्लि' को 'क्स' आदेश हो जायगा। तब प्रत्यय सकारादि हो जाता है। घत्व, भष्भाव, कत्व, षत्व, क्षत्व होकर 'अधुक्षत्' आदि रूप बनते हैं।

सम्पूर्ण रूप–

प्र० अधुक्षत्, अधुक्षताम् अधुक्षन्।

म० अधुक्षः, अधुक्षतम्, अधुक्षत।

उ० अधुक्षम, अधुक्षाव, अधुक्षाम।

लुग् वा दुह-दिह-लिह-गुहामात्मनेपदे दन्त्ये 7.3.73

एषां क्सस्य लुग्वा स्यात्, दन्त्ये तङि। अदुग्ध-अधुक्षत।

व्याख्याः दुह्, दिह्, लिह् और गुह् धातुओं के 'क्स' का लुक् विकल्प से हो दन्त्य तङ् परे होने पर।

'तङ्' का अर्थ 'आत्मनेपद' होता है। इसमें अन्त्य तङ्—त, थास् और ध्वम् हैं। इन तीनों में 'क्स' का लोप होता है। लोप पक्ष में लङ् के समान रूप हो जाते हैं। 'वहि' में भी लोप होता है, उस पक्ष में जिस में 'व' कार का दन्त्य स्थान भी माना जाता है, जिस पक्ष में नहीं माना जाता उसमें नहीं।

लोपपक्ष में त का रूप–अदुग्ध। अभावपक्ष में—अधुक्षत।

क्सस्याचि 7.3.72

अजादौ तङि क्सस्य लोपः। 'अलोन्त्यस्य' इत्यकारलोपः। अधुक्षाताम्, अधुक्षन्त; अदुग्धाः-अधुक्षथाः, अधुक्षाथाम्, अधुगध्वम्-अधुग्ध्वम्। अधुक्षि, अदुह्वहि-अधुक्षावहि, अधुक्षामहि। अधोक्ष्यत्, अधोक्ष्यत।

व्याख्याः अजादि तङ् परे होने पर 'क्स' के अन्त्य अकार का लोप होता है।

अधुक्षाताम्–'आताम्' में 'अधुक्ष आताम्' इस दशा में अकार से परे मिल जाने के कारण आकार को 'आतो' ङितः, से 'इय्' प्राप्त होता है। उसके अपवाद रूप में प्रकृत सूत्र से 'क्स' के अकार के लोप का विधान किया गया है। अतः 'क्स' के अकार का लोप होने पर 'अधुक्षाताम्' रूप सिद्ध हुआ।

अधुक्षन्त–यहाँ 'अन्त्[1]' आदेश होने पर 'क्स' के अकार का लोप होकर उक्त रूप सिद्ध होता है।

दिह उपचये

व्याख्याः इसी प्रकार दिह् (वद्धि होना) धातु के भी रूप बनते हैं। 'दुह्' में जो कार्य होते हैं, वे सभी 'दिह्' को भी होते हैं।

उपसर्ग के योग में—

उपदेग्धि—लीपता है। संदेग्धि—सन्देह करता है।

देह—शब्द इसी धातु से बना है। देह का अर्थ शरीर है— यह बढ़ता रहता है।

लिह आस्वादने

लेढि, लीढः, लिहन्ति। लेक्षि। लीढे, लिहाते, लिहते; लिक्षे, लिहाथे, लीढ्वे। लिलेह, लिलिहे। लेढासि, लेढासे। लेक्ष्यति, लेक्ष्यते। लेढु, लीढाम, लिहन्तु; लीढि; लेहानि। लीढाम्। अलेट-अलेड्। अलिक्षत्, अलिक्षत-अलीढ। अलेक्ष्यत्, अलेक्ष्यत।

व्याख्याः (चाटना)—'लिह' धातु में दकार न होने से भष्भाव और धतव नहीं होते। इसके हकार 'हो ढः' से ढकार आदेश होता है। दुह् के समान अजादि और वकारा दि तथा मकारादि प्रत्ययों के परे रहते कोई विशेष कार्य नहीं होता।

हलादियों में तकारादि तथा थकारादि परे रहते हकार को ढकार, प्रत्यय के तकार और थकार को 'झषस्तथोर्धोधः' से धकार, धकार को ष्टुत्व ढकार, 'ढो ढे लोपः' से पूर्व ढकार का लोप होने पर यदि गुण की प्राप्ति होती है तो गुण होता है नहीं तो 'ढलोपे पूर्वस्य दीर्घोणः' से इकार को दीर्घ होता है। 'ध्वम्' में भी यही प्रक्रिया होती है।

सकारादि प्रत्ययों के परे रहते हकार को ढकार, ढकार को 'षढोः का सिः' से ककार, सकार को इण् ककार से परे होने के कारण मूर्धन्य षकार ओर 'क् ष' संयोग से 'क्ष' होती है।

यही प्रक्रिया है जिससे 'लिह्' के रूप सिद्ध होते हैं।

लेढि—तिप् में शप के लोप होने पर गुण ढत्व, धत्व, ष्टुत्व और ढलोप होते हैं।

लीढ़ः—ढत्व, धत्व, ष्टुत्व ढलोप और इकार को दीर्ध होता है।

लेक्षि— सिप् में ढत्व, कत्व, षत्व होते हैं।

लिक्षे— आत्मनेपद से, ढ् क् ष्।

लीढि— लोट् के सिप् को अपित् 'हि' आदेश होने पर, उस हि को 'धि' आदेश, ढत्व, ष्टुत्व, ढलोप और दीर्घ कार्य होते हैं।

लेहानि—में आट् के पित होने से गुण हो जाता है।

लोट—आत्मनपद में —

प्र० लीढाम्, लिहाताम, लिहताम।

म० लिक्ष्व, लिहाथाम्, लीढ्वम्।

उ० लेहै, लेहावहै, लेहामहै।

लङ् प०—

प्र० अलेट्—ड्, अलीढाम, अलिहन्।

म० अलेट्—ड् अलीढम्, अलीढ।

उ० अलेहम्, अलिह्व, अलिह्म।

यहाँ तिप् में शप् के लुक् होने पर इकार का लोप, हल्ङ्यादि लोप, हकार को ढकार और चर्त्व विकल्प से होता है। 'मिप्' में पित् होने से गुण हो जाता है।

---

१. इसमें 'अन्त्' आदेश होने पर ही अजादि प्रत्यय परे मिलता है। इस लिए 'क्स' के अकार के लोप होने से पहले 'अन्त्' आदेश हो जाता है। उस समय 'क्स' के अकार से परे होने के कारण 'आत्मनेपदेष्वनतः' सूत्र से 'झ्' को 'अत्' आदेश नहीं हो पाता। इस बात का ध्यान रहना चाहिए।

आ० प०—

प्र० अलीढ, अलिहाताम, अलिहत।

म० अलीढाः, अलिहाथाम्, अलीढ्वम्।

उ० अलिहि, अलिह्वहि, अलिह्महि।

विधिलिङ् परस्मैपद में —लिह्याताम, इत्यादि और आत्मनेपद में—लिहीत, लिहीयाताम्, लिहीरन् आदि रूप बनते हैं।

आशीर्लिङ् परस्मैपद में — लिह्यात्, लिह्याताम् इत्यादि और आत्मनेपद में—लिहीत, लिहीयाताम्, लिहीरन् आदि रूप बनते हैं।

लुङ् में—

प्र० अलिक्षत्, अलिक्षताम्, अलिक्षन्।

म० अलिक्षः, अलिक्षतम् अलिक्षत।

उ० अलिक्षम् अलिक्षाव, अलिक्षाम।

आत्म० प०

प्र० अलिक्षत—अलीढ, अलिक्षाताम, अलिक्षन्त।

म० अलिक्षथाः—अलीढाः, अलिक्षाथाम्, अलिक्षध्वम्—अलीढ्वम्।

उ० अलिक्षि, अलिक्षावहि—अलिह्वहि, अलिक्षामहि।

यहाँ दन्त्य तङ् प्रत्ययों में 'लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये' सूत्र से 'क्स' का लोप होने से लङ् के समान भी रूप बनते हैं।

'अवलेह' शब्द इसी धातु से बना है। अवलेह् का अर्थ चटनी होता है।

ब्रू व्यक्तायां वाचि

व्याख्याः (व्यक्त वाणी)—वयक्त वाणी का अर्थ स्पष्ट बोलना है। अर्थात् जिस वाणी में सार्थक शब्द हों—ऐसी वाणी मनुष्यों की ही होती है। अतः इस धातु का प्रयोग मनुष्यों के बोलने अर्थ में होता है।

ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः 3.4.88

ब्रुवो लटस्तिबादीनां पञ्चानां णलादयः पञ्चवा स्युः, ब्रुवश्चाहादेशाः। आह, आहतुः, आहुः।

व्याख्याः इति—'ब्रू' धातु से पर लट्स्थानीय तिप् आदि पाँच प्रत्ययों को णल् आदि पाँच आदेश विकल्प से हों और 'ब्रू' को 'आह्' आदेश हो।

आह—ब्रू धातु से लट् के तिप् की णल् आदेश और प्रकृति को 'आह्' आदेश होकर रूप सिद्ध होता है।

आहतुः और आहुः भी इसी प्रकार सिद्ध होते हैं।

सिप् को थल् और प्रकृति को 'आह्' होने पर 'आह् थ' यह स्थिति होती है।

आहस्थः 8.2.35

झलि परे। चर्त्वम्—आत्थ, आहथुः।

व्याख्याः 'आह्' को 'थकार' आदेश हो झल् परे होने पर।

'अलोन्त्य' परिभाषा से अन्त्य हकार को थकार होता है।

आत्थ—'आह+थ' इस स्थिति में प्रकृत सूत्र से हकार को थकार आदेश होने पर थकार को चर्त्व तकार होकर रूप बनता है।

ब्रुव ईट् 7.3.93

ब्रुवः परस्य हलादेः पित ईट् स्यात्। ब्रवीति, ब्रूतः, ब्रुवन्ति। ब्रूते, ब्रुवाते, ब्रुवते।

व्याख्याः 'ब्रू' से पर हलादि पित् प्रत्यय को 'इट्' आगम हो। हलादि पित् प्रत्यय पित्, सिप् और मिप् ये तीन हैं। इनकी ईट् भी होगा और इनके परे होने पर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः से गुण भी होता है। 'अन्त' में अपित् होने से ङित् होने के कारण गुण न होकर 'अचि श्नुधातुभ्रुवांय्वोरियङुवङौ' से उवङ् आदेश होता है। इसी प्रकार आत्मनेपद के अजादि प्रत्यय आते, अते, आथे,, ए–में भी 'उवङ' आदेश होता है।

लट् के शेष रूप–

म० ब्रवीषि, ब्रूथः, ब्रूथ,। ब्रूषे, ब्रुवाथे, ब्रूध्वे।

उ० ब्रवीमि ब्रूवः व्रूमः। ब्रु वे, ब्रूवहे, ब्रूमहे।

ब्रुवो वचिः 2.4.53

आर्धधातुके। उवाच, ऊचतुः ऊचुः। उवचिथ-उवक्थ। ऊचे। वक्ता। वक्ष्यति, वक्ष्यते। ब्रवीतु-ब्रूतात्, ब्रूताम्, ब्रुवन्तु, ब्रूहि।

व्याख्याः इति–ब्रू को 'वच्' आदेश हो आर्धधातुक प्रत्यय परे होने पर

उवाच– आर्धधातुक होने से लिट् में 'वच' आदेश हो जाता है। तब णल् में द्वित्व होने पर अभ्यास वकार की 'लिट्चभ्यासस्योभयेषाम्' से संप्रसारण उकार होकर 'उवाच' रूप बनता है।

ऊचतुः, ऊचुः–'अतुस्' आदि कित् प्रत्ययों में 'संप्रसारणं तदाश्रयं च कार्य बलवत्' परिभाषा के बल से 'वचिस्वपियजादीना'–किति' सूत्र से द्वित्व से पहले संप्रसारण और तदाश्रित कार्य पूर्ववत् होते हैं। तब द्वित्व आदि अन्य कार्य होते हैं।

उवचिथ, उवक्थ–तास् में नित्य अनिट् अकारवान् होने से यहाँ वैकल्पिक इट् होता है। इडभावपक्ष में 'चोः कुः' से चकार को ककार होता है।

ऊचे–आत्मनेपद के प्रत्यय अपित होने से 'असंयोगाल्लिट् कित्' सूत्र से कित् होते हैं। अतः इनमें द्वित्व से पहले संप्रसारण होता है।

सम्पूर्ण रूप–

आ० ऊचे, ऊचाते, ऊचिरे।

म० ऊचिषे, ऊचाथे ऊचिध्वे।

उ० ऊचे, ऊचिवहे, ऊचिमहे।

लुट् के परस्मैपद में –वक्ता, वक्तारौ, वक्तारः। वक्तासि आदि रूप और आत्मनेपद में–वक्तासे, वक्तासाथे आदि रूप बनते है।

वक्ष्यति–लृट् में चकार की कुत्व होने पर 'स्य' प्रत्यय के सकार को मूर्धन्य आदेश होकर दोनों के संयोग से 'क्ष' हो जाता है।

इसी प्रकार लृङ में और आशीर्लिङ के सीयुट् में–क्योंकि आर्धधातुक होने से वहाँ सकार का लोप नहीं होता–'क्ष' हो जाता है। अतएव इन स्थलों में 'वह' धातु के समान ही रूप हो जाते हैं, 'वह्' के हकार को पहले ढकार होता है, तब उसको 'षढोः कः सि' से ककार, तब षत्य होकर क्ष' हो जाता है।

लृट में –वक्ष्यति, वक्ष्यतः वक्ष्यन्ति। वक्ष्यते, वक्ष्येते, वक्ष्यन्ते इत्यादि। लृङ् में –अवक्ष्यत्, अवक्ष्यात्, अवक्ष्यन्। अवक्ष्यत, अवक्ष्येताम्, अवक्ष्यन्त इत्यादि। आशीर्लिङ् आत्मनेपद में–वक्षीष्ट, वक्षीयास्ताम्, वक्षीरन् इत्यादि।

लोट में– तिप् को ईट् होता है। सिप् को अपित् 'हि आदेश होने से और मिप् को आट् आगम होने के कारण हलादि न मिलने से 'ईट्' नहीं होता।

प० प्र० ब्रवीतु–ब्रूतात, ब्रूताम्, ब्रुवन्तु।

म० ब्रूहि–ब्रूतात, ब्रूतम्, ब्रूत।

उ० ब्रवाणि, ब्रवाव, ब्रवाम।

आ० प्र० ब्रूताम, ब्रुवाताम्, ब्रुवताम।

म० ब्रूष्व, ब्रुवाथाम्, ब्रूध्वम्।

उ०, ब्रवं ब्रवावहै, ब्रवामहै।

लङ्–प० प्र० अब्रवीत्, अब्रूताम, अब्रुवन्।

म० अब्रवीः, अब्रूतम्, अब्रूत।

उ० अब्रवम्, अब्रूव, अब्रूम।

आ० प्र० अब्रूते, अब्रुवाताम्, अब्रुवन्त।

म० अब्रूथाः, अब्रुववाथाम्, अब्रूध्वम्।

उ० अब्रुवि, अब्रुवहि, अब्रूमहि।

'अब्रवीत्' और 'अब्रवीः' में हलादि पित् सार्वधातुक होने से 'ब्रुव ईट्' से ईट् हुआ। मिप् को अम् होने पर हलादि न मिलने से नहीं हुआ।

'ङित् अजादि प्रत्यय 'अन्ति' आदि के परे रहते उवङ् आदेश होता है

विधिलिङ्–प० प्र० ब्रूयात, ब्रूयाताम्, ब्रूयुः।

म० ब्रूयाः, ब्रूयातम्, ब्रूयात।

उ० ब्रूयाम, ब्रूयाव, ब्रूयाम।

आ० प्र०–ब्रुवीत, ब्रुवीयाताम्, ब्रुवीरन।

म० ब्रुवीथाः ब्रुवीयाथाम्, ब्रुवीध्वम्।

उ०ब्रुवीय, ब्रुवीवहि, ब्रुवीमहि।

आशीलिङ्– प० प्र० उच्यात्, उच्यास्ताम् उच्यासुः।

म० उच्याः उच्यास्तम्, उच्यास्त।

उ० उच्यासम्, उच्यास्व, उच्यास्म।

यहाँ परस्मैपद में यासुट के 'किदाशिपि' से कित् होने के कारण संप्रसारण हो जाता है। आत्मनेपद में सीयुट् कित् नहीं, संप्रसारण नहीं होता अतः 'वक्षीष्ट' आदि रूप बनते हैं।

अस्यति-वक्ति-ख्यातिभ्योङ् 3.1.55

एभ्यश्च्लेरङ् स्यात्।

व्याख्याः अस् (दि० फेंकना), वच् (अ० बोलना) और ख्या (अ० कहना) धातुओं से पर च्लि को अङ् आदेश हो।

लुङ् में च्लि आने पर आर्धधातुक होने से 'ब्रू' को 'वच्' आदेश होता है। उससे पर 'च्लि' को अङ् आदेश प्रकृत सूत्र से हो जाने पर 'अवच् अ त्' यह स्थिति बनती है।

वच उम् 7.4.10

अङि परे। अवोचत्। अवक्ष्यत्, अवक्ष्यत।

(ग० सू०) चर्करीत। च। चर्करीतमिति यङ्लुगन्तम् तददादौ बोध्यम।

व्याख्याः वच् को उम् आगम हो अङ् परे होने पर।

अवोचत्–यहाँ 'अ वच् अ त्' इस पूर्वोक्त स्थिति में प्रकृत सूत्र से उम् अन्त्य अच् वकारोत्तरवर्ती अकार के आगे होता है। अ–व उ च् अ त्' इस अवस्था में गुण होने पर 'अवोचत्' रूप सिद्ध होता है।

इसी प्रकार –प०

प्र० अवोचताम्, अवोचन्।

म० अवोचः, अवोचतम्, अवोचत।

उ० अवोचम्, अवीयाव, अवोचाम।

आ० प्र० अवोचत, अवोचेताम्, अवोचन्त

म० अवोचथाः, अवोचेथाम्, अवोचध्वम्।

उ० अवोचि, अवोचावहि, अवीचामहि–

ये रूप बनते हैं।

(ग० सू०) चर्करीतमिति–'चर्करीत'[1] यङ् लुगन्त को कहते हैं उसको अदादिगण में समझना चाहिये अर्थात् जो कार्य शप् का लुक् अदादिगण में होता है, वह यङ् लुगन्त धातुओं को भी हो।

यह गणसूत्र हैं अदादिगण का निरूपण करते हुए यह कहा गया है। अतः यङ् लुगन्त धातु अदादिगण के अन्तर्गत हुए। अतः यङ् लुगन्त में शप् का लुक् होगा। जैसे–बोभोति। 'बोभू' यह यङ् लुगन्त धातु है। अदादि होने से इससे शप का लुक् हो जाता है।

ऊर्णु्‌ आच्छादने 24

व्याख्याः २४ ऊर्णु (ढकना)–यह धातु ञित् होने से उभ्य पदी है और अनेका–च् होने से सेट् भी।

ऊर्णोतेर्विभाषा 7.3.10

वा वद्धिः स्याद् हलादौ पिति सार्वधा तु के। ऊर्णोति-ऊर्णोति, ऊर्णुवन्ति। ऊर्णुवाते, ऊर्णुवाते, ऊर्णुवते।

व्याख्याः 'ऊर्णु' धातु को विकल्प से वद्धि हो हलादि पित् सार्वधातुक परे होने पर।

'अलोन्तयस्य' परिभाषा से वद्धि अन्त्य अल उकार को होगी।

हलादि पित् सार्वधातुक तिप्, सिप्, मिप्–ये तीन हैं। इनके परे रहते उकार को वद्धि होगी, अभावपक्ष में सार्वधातुक गुण होगा। शेष में अपित् होने से ङिद्वत् होने के कारण गुण भी न होगा। अजादियों में उवङ् आदेश होगा। आत्मनेपद के सभी प्रत्यय अपित् होने से ङिद्वत् हैं, अतः वहाँ वद्धि और गुण–दोनों नहीं होते, सर्वत्र उवङ् आदेश होता है।

शेष रूप –

प्र० ऊर्णौषि–ऊर्णोषि, ऊर्णुथः, ऊर्णुथ।

उ० ऊर्णौमि–ऊर्णोमि, ऊर्णुवः, ऊर्णुमः।

आ० म० ऊणौ, ऊर्णुवाथे, ऊर्णुध्वे।

उ० ऊर्णुवे, ऊर्णुवहे, ऊर्णुमहे।

(वा) ऊर्णोतेराम् नेति वाच्यम्।

व्याख्याः (वा) ऊर्णोतेरिति– ऊर्णु धातु से आम् न हो–यह कहना चाहिये। इजादि गुरुमान् होने से 'इजादेश्च गुरुमतोनच्छः' सूत्र से यहाँ आम् प्राप्त थां इस वार्तिक से निषेध किया गया है। इच् ऊकार है और वह दीर्घ होने से गुरु भी है। अतः यह 'ऊर्णु' धातु इजादि गुरुमान् है।

आम् के निषेध होने पर लिट् में द्वित्व प्राप्त होता है। यह अजादि धातु है, अतः द्वितीय एकाच को द्वित्व होगा। द्वितीय एकाच् 'र्णु' है। इसमें रेफ को भी द्वित्व प्राप्त होता है।

न न्द्रा संयोगादयः 6.1.3

अचः पराः संयोगादयो नदरा द्विर्न भवन्ति। 'नु'शब्दस्य द्वित्वम्। ऊर्णुनाव, ऊर्णुनुवतुः, ऊर्णुनुवुः।

व्याख्याः इति—अच् से पर वर्तमान संयोगादि नकार, दकार और रेफ को द्वित्व न हो।

'ऊर्णु' में रेफ अच् ऊकार से पर है और संयोग 'ण्' के आदि में है। अतः प्रकृत सूत्र से उसको प्राप्त द्वित्व का निषेध हो जाता है।

नु—शब्दस्येति—तब 'नु'[१] शब्द को द्वित्व होता है। द्वित्व होने पर अभ्यास के नकार को पुनः रेफ से पर होने के कारण णत्व हो जाता है परन्तु अभ्यास के उत्तरखण्ड में नकार ही रहता है।

ऊर्णुनाव—पूर्वोक्त प्रकार से द्वित्व होने पर 'ऊर्णुनु अ' इस दशा में अचो ञ्णिति' से औ वद्धि होने पर 'आव्' आदेश होकर रूप सिद्ध होता है।

ऊर्णुनुवतुः और ऊर्णुनुवुः— में अपित् लिट् के कित् होने से उकार को गुण तो नहीं हो पाता, उवङ् आदेश हो जाता है।

विभाषोर्णोः 1.2.3

इडादिप्रत्ययवो वा ङित् स्यात्। ऊर्णुनुर्थि-ऊर्णुनविथ। ऊर्णुविता-ऊर्णविता। ऊणुविष्यति-ऊर्णविष्यति। ऊर्णोतु-ऊर्णोतु-ऊर्णोतु। ऊर्णवानि, ऊर्णवै।

व्याख्याः 'ऊर्णु' धातु से पर इडादि प्रत्यय विकल्प से ङित् हो। ङित्पक्ष में गुण का निषेध हो जायगा और तब 'उवङ्' आदेश होगा। अभावपक्ष में गुण होगा। इस प्रकार दो दो रूप बनेंगे।

क्योंकि यह धातु अनेकाच् होने से सेट् है, अतः इसकी इट् सर्वत्र होता है। थल् में इडादि प्रत्यय मिलता है, और इसीलिये प्रकृत सूत्र से ङित् विकल्प से होता है। ङित्पक्ष में उवङ् और अभावपक्ष में गुण और अव् आदेश होंगे।

म० ऊर्णुनुविथ—ऊर्णनविथ, ऊर्णुनुवथुः, ऊर्णुनव।

उ० ऊर्णुनाव,ऊर्णुनव, ऊर्णुविव ऊर्णुनविव, ऊर्णुनुविम—ऊर्णुनविम।

आ० प्र० ऊर्णुनुवे, ऊर्णुनुवाते, ऊर्णुनुविरे।

म० ऊर्णुनुविषे—ऊर्णुनविषे, ऊर्णुवथे, ऊर्णुविढ्वे—ऊर्णुनुविध्वे।

उ० ऊर्णुनुवे, ऊर्णुनुविवहे—ऊर्णुनविवहे, ऊर्णुविमहे—ऊर्णुनविमहे।

लुट्—प० प्र० ऊर्णुविता, ऊर्णुवितारौ, ऊर्णुवितारः। ऊर्णुविता, ऊर्णुवितारौ ऊर्णुवितारः।

म० ऊर्णुवितासि, ऊर्णुवितास्थ५, ऊर्णुवितास्थ। ऊर्णुवितासि, ऊर्णुतिास्थः, ऊर्णुवितास्थ।

उ० ऊर्णुवितास्मि, ऊर्णुवितास्वः, ऊर्णुवितास्मः। ऊर्णुबितासिम, ऊर्णुवितास्वः, ऊर्णुवितास्मः।

आ० म० ऊर्णुवितासे, ऊर्णुवितासाथे, ऊर्णुविताहे, ऊणुवितासे, ऊर्णुवितासाथे, ऊर्णुविताथ्वे।

उ० ऊर्णुविताहे, ऊर्णुवितास्वहे, ऊर्णुवितास्महे। ऊर्णुविताहे, ऊर्णुवितास्वहे, ऊर्णुवितास्महे।

लृट् प० प्र० ऊर्णुविष्यति, ऊर्णुविष्यतः, ऊर्णुविष्यन्ति। ऊर्णुविष्यति, ऊर्णुविष्यतः, ऊर्णुविष्यति।

म० ऊर्णुविष्यसि, ऊर्णुविष्यथः, ऊर्णुविष्यथ। ऊर्णुविष्यसि, ऊर्णुविष्यथः, ऊर्णुविष्यथ।

उ० ऊर्णुविष्यामि, ऊर्णुविष्याा, ऊर्णुविष्यामः। ऊर्णुविष्यामि, ऊर्णुविष्यावः, ऊर्णुविष्याम्।

आ० प्र० ऊर्णुविष्यते, ऊर्णुविष्येते, ऊर्णुविष्यन्ते। ऊर्णुविष्यते, ऊर्णुविष्येते, ऊर्णुविष्यन्ते।

म० ऊर्णुविष्यसे, ऊर्णु विष्येथे, ऊर्णुविष्यध्वे। ऊर्णुविष्यसे, ऊर्णुविष्येथे, ऊर्णुविष्यध्वे।

---

१. यङ् लुगन्त की प्राचीन आचार्यों ने 'चर्करीत' यह संज्ञा रखी है। क्योंकि 'चर्करीत' यङ् लुगन्त से ही बना है। परिचय के लिये यह संज्ञा समुचित है। इसी प्रकार ण्यनत की 'कारित' और सन्नन्त की 'चिकीर्षित' संज्ञा है।

उ० ऊर्णुविष्ये, ऊर्णुविष्यावहे, ऊर्णुविष्यन्ते।

म०ऊर्णुविष्यसे, ऊर्णुविष्येथे, ऊर्णुविष्यध्वे। ऊर्णुविष्यसे ऊर्णुविष्येथे, ऊर्णुविष्यध्वे।

उ० ऊर्णुविष्ये, ऊर्णु विष्यावहे, ऊर्णुविष्यामहे। ऊर्णुविष्ये, ऊर्णुविष्यावहे, ऊर्णुविष्यामहे।

लोट प० प्र० ऊर्णोतु–ऊर्णोतु ऊर्णुतात, ऊर्णुताम्, ऊर्णुवन्तु।

म० ऊर्णुहि–ऊर्णुतात्, ऊर्णुतम्, ऊर्णुत।

उ० ऊर्णुवानि, ऊर्णुवाव, ऊर्णुवाम।

आ० प्र० ऊर्णुताम्, ऊर्णुवाताम, ऊर्णुवताम्।

म० ऊर्णुष्व ऊर्णुवाथाम्, ऊर्णुध्वम्।

उ० ऊर्णुवै, ऊर्णुवावहै, ऊर्णुवामहै।

गुणोपक्ते 7.3.91

ऊर्णोतेगुणोपक्ते हलादौ पिति सार्वधातुके। वद्ध्यपवादः। और्णोत्, और्णोः। ऊर्णुयात्, ऊर्णुयाः। ऊर्णुवीत। ऊर्णुयात्। ऊर्णुविषीष्ट-ऊर्णविषीष्ट।

व्याख्याः 'ऊर्णु' धातु को गुण हो अपक्त हलादि पित् सार्वधातुक परे होने पर।

वद्धचपवाद इति— यह सूत्र 'उर्णोतेर्विभाषा सूत्र से प्राप्त वद्धि का बाधक है।

लङ् लकार में 'तिप्' और 'सिप्' के इकार का 'इतश्च' के लोप होने से अपक्त हलादि पित् सार्वधातुक मिलता है, इनमें वद्धि को बाधकर गुण हो जाता है। 'मिप् को 'अम्' आदेश हो जाने से हलादि नहीं रह जाता, अतः वहाँ वद्धि प्राप्त भी नहीं होती। वहाँ सामान्य सार्वधातुक गुण होता है।

प० —

प्र० और्णोत्, और्णुताम्, और्णुवन।

म० और्णोः, ओर्णुतम्, और्णुत।

उ० और्णवम्, और्णुव, और्णुम।

आ —

प्र० और्णुत, और्णुवाताम, और्णुवत।

म० और्णुथाः, और्णुवाथाम्, और्णुध्वम्।

उ० और्णुवि, और्णुवहि, औणुमहि।

विधिलिङ्—

प० ऊर्णुयात्, ऊर्णुयाताम्, ऊर्णुयुः।

म० ऊर्णुयाः ऊर्णुयातम्, ऊर्णुयात।

उ० ऊर्णुयाम्, ऊर्णुयाम्, ऊर्णुयाव ऊर्णुयाम।

आ०

प्र० ऊर्णुवीत, ऊर्णुवीयाताम्, ऊर्णुवीरन।

म० ऊर्णुयाः ऊर्णुयातम्, ऊर्णुयात।

उ० ऊर्णुवीय, ऊर्णुवीवहि, ऊर्णुवीमहि।

---

१. यहाँ य ध्यान रहना चाहये कि धातुओं में जाहँ रेफ से पर णकार है, वह नकार के ही स्थान में हुआ–यह निश्चित है। इसके अतिरिक्त–नकार 'नकाराजावनुस्वार–पचमौ झलि धातुषु। सकाराजः षकाश्च षाट्टवर्गस्तवर्गजः।।' इति।। अर्थात् धातुओं में जो झल्पर अनुस्वरार या पचम वर्ण मिलते हैं, वे नकार–स्थानिक हैं, षकार सकार–स्थानिक और पकार से पर टवर्ग तवर्ग–स्थानिक हैं।

आशीर्लिङ् –

प० ऊर्णुयात्, ऊर्णुयास्ताम, ऊर्णुयासुः।

म० ऊर्णुयाः, ऊर्णुयास्तर्म, ऊर्णुयास्त।

उ० ऊर्णुयासम्, ऊर्णुयास्व, ऊर्णुयास्म।

यहाँ अकृत्सार्वधातुकयोः' से दीर्घ होता है।

आ०–

प्र० ऊर्णुविषीष्ट, ऊर्णुविषीयास्ताम्, ऊर्णुविषीरन, ऊर्णुविषीष्ट, ऊर्णुविषीयास्ताम, ऊर्णुविषीरन्।

म० ऊर्णुविषीष्ठाः, ऊर्णुविष्ज्ञीयास्थाम्, ऊर्णुविष्ज्ञीध्वम्। ऊर्णुविषीष्ठाः, ऊर्णुविषीयास्थाम्, ऊर्णुविषीध्वम्।

उ० ऊर्णुविषीय, ऊर्णु विषीवहि, ऊर्णुविषीमहि। ऊर्णुविषीय ऊर्णुविषवहि, ऊर्णुविषीमहि।

यहाँ इडादि प्रत्यय विकल्प से ङित् होता है। ङित्पक्ष में उवङ् और अभावपक्ष में गुण यथापूर्व होता है।

ऊर्णोतेर्विभाषा 7.2.6

इडादौ परस्मैपदे परे सिचि वा वद्धिः। पक्षे गुणः। और्णावीत्–और्णुवीत्-और्णवीत्। और्णाविष्टाम्- और्णुविष्टाम्-और्णविष्टाम्। और्णुविष्ट, और्णविष्ट। और्णविष्यत्। और्णुविष्यत्, और्णविष्यत्।

व्याख्याः ऊर्णोतेरिति 'ऊर्णु' धातु की इडादि परस्मैपद सिच् परे रहते विकल्प से वद्धि हो।

पक्षे इति–पक्ष में गुण होता है।

इस प्रकार लुङ् में भी इडादि प्रत्यय मिलता है। वह जब ङित् होता है तब उवङ् आदेश हो जाता है और अभावपक्ष में गुण को बाधकर प्रकृत सूत्र से वद्धि विकल्प से होती है। वद्धि के अभावपक्ष में गुण हो जाता है। इस प्रकार लुङ् परस्मैपद में तीन रूप बनते हैं।

और्णुविष्ट–और्णविष्ट–आत्मनेपद में वद्धि तो होती नहीं, क्योंकि उसका विधान परस्मैपद में ही किया गया है, अतः ङिद् विकल्प से दो दो रूप बनते हैं।

पहले कह दिया गया है कि परस्मैपद में तीन तीन रूप बनेंगे। आत्मनेपद में दो दो बनेंगे।

ऌङ् लकार में भी ङिद् विकल्प से दो –दो रूप बनते हैं।

(अदादिगण समाप्त)